SIKHO KE DUS GURU

सिक्खों के
दस गुरु

ओ३म्

सिक्खों के दस गुरु

श्री मोहन लाल शर्मा

प्रकाशक—

अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवा संघ,
पो० बिरला लाइन्स, सब्जी मंडी, दिल्ली

सप्तम संस्करण
४०००

सं० २०२२

मूल्य-७५ न० पै०

विषय-सूची

—:o:—

पृष्ठ

श्री लक्ष्मी प्रिंटिंग प्रेस, रोशनआरा बाग के सामने, दिल्ली।

भूमिका

काश्मीर से कन्या कुमारी तक और अटक से कटक तक फैला हुआ यह विशाल आर्यावर्त एवं अनन्तकाल से यहां निवास करने वाली महान आर्य-जाति ये दोनों शरीर और इन्द्रियों के समान परस्पर एक दूसरे के संबद्ध हैं।

अपने सहस्रों वर्षों के प्राचीन इतिहास में आर्य (हिन्दू) जाति यहां अनेक परिवर्तनों में से गुजरी, अनेक आघात-प्रत्याघात सहे। विजय और पराजय, वैभव एवं पतन के दिन देखे, अनेक विदेशी आक्रमणों से टक्करें लीं। अनेक देशद्रोहियों के कलुषित कार्य-कलापों के परिणामों को भी भोगा। इसने अनेक राष्ट्रों को उठते देखा, अनेक विश्वविजेताओं की दुर्दमनीय सेनाओं को आंधी के समान बढ़ते देखा, किन्तु आज न उन राष्ट्रों का अस्तित्व है और न है उन विजेताओं के साम्राज्यों का किंचित् भी अवशेष। परन्तु यह आर्य (हिन्दू) जाति आज भी विद्यमान है। क्यों? इस लिए कि अनेक विश्वमान्य अवतारी महापुरुष, सन्त, महात्मा, धर्मप्रवर्तक यहाँ समय समय पर उत्पन्न होते रहे। जब जब समाज की धर्म भावनाओं में दोष आये, समाज में विश्रृंखलता एवं गिरावट हुई तब तब महापुरुषों ने प्रगट होकर पुनः समाज की व्यवस्था को ठीक किया।

इतिहास का मध्य-युग इसी प्रकार का समय था। हिन्दुओं की धर्म-भावनाओं पर संकट छा गया था। लोग धर्म के मर्म को भुला बैठे थे। तब सोहलवीं सदी में एक महात्मा—

सिक्ख-पन्थ के संस्थापक गुरु नानक जी ने जन्म लेकर अन्धकार को दूर किया।

श्री गुरु नानक जी के जन्म से पहिले हिन्दुस्तान में क्या २ घटनायें घटित हुई, समाज की कैसी अवस्था थी यह जान लेना परम आवश्यक है। अरब के उस कोने से उठी इस्लाम मत की आंधी ईराक, ईरान (आर्यान) गान्धार आदि प्रदेशों में सर्वत्र छा गयी थी। धर्म के जोश में मतवाले मुसलमान एक हाथ में तलवार और दूसरे में कुरान ले कर चहुं ओर दौड़ पड़े और जो आगे आया उसे मुसलमान बना लिया अथवा तलवार के घाट उतार दिया। भारत में भी उत्तरी-पश्चमी दर्रों से होकर इस्लाम ने प्रवेश किया।

प्रथम आक्रमण आठवीं सदी में सिन्धु प्रदेश पर मुहम्मद बिन कासिम ने किया। तदनन्तर खलीफा मामू, महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी आदि आक्रान्ताओं के अनेक बार आक्रमण हुए। इन आक्रमणों में उन्होंने हिन्दूओं पर भीषण अत्याचार किये। लाखों को मुसलमान बनाया। सहस्रों ललनाओं का सतीत्व नष्ट किया। मन्दिरों को गिराया। अनेक सुन्दर २ राजधानियों को खंडहर बना दिया। बड़े २ पुस्तकालयों को जला दिया। अंत में ११ वीं सदी में भारत-सम्राट पृथ्वीराज चौहान की अनुचित उदारता अथवा राजनीतिक भूल (मुहम्मद गोरी जैसे देश के भंयकर शत्रु को अनेक बार परास्त कर एवं बन्दी बनाकर भी छोड़ देने) के परिणामस्वरूप यह पवित्र-भूमि मुसलमानों के अधिकार में चली गयी।

इसके पश्चात् दिल्ली के सिंहासन पर गुलाम वंश, खिलजी वंश और तुगलक वंश का प्रभुत्व रहा। उनके समय में भी

हिन्दुओं पर अत्याचार यथापूर्व बने रहे । मुसलमानों ने मन्दिरों को बहुत सख्या में नष्ट कर दिया । चारों ओर मौलवी मुल्लाओं का जाल बिछ गया था । हिन्दू स्वेच्छा-पूर्वक अपने धार्मिक-कृत्य भी नहीं कर सकते थे । तीर्थयात्रा की आज्ञा कभी मिल जाती थी, तभी कर पाते थे । हिन्दू-धर्म का प्रचार करना अपराध था ।

इसी समय में हिन्दूओं में रूढ़िवाद का अधिक प्रचार हो गया था । धर्म के नाम से पाखंड का प्रचार कर स्वार्थी लोग अधिक लाभ उठा रहे थे । ऐसी अवस्था को वास्तविक-स्थिति में लाने के निमित्त कहीं तो ईश्वरीय शक्ति का प्रादुर्भाव होना आवश्यक था । यह शक्ति श्री गुरु नानक जी के रूप में तलवडी ग्राम के एक पटवारी के घर प्रस्फुटित हुई ।

गुरु नानक जी ने हिन्दू-धर्म से भिन्न किसी धर्म का प्रचार नहीं किया । देश-काल को लक्ष्य में रख कर उन्होंने वेद, उपनिषद् गीता आदि आर्य्य सद्ग्रन्थों के सिद्धान्तों का ही प्रचार किया । वे ईश्वर के अनन्य भक्त थे । ईश्वर-भक्ति का ही उपदेश देते थे । कुछ लोग कहते हैं कि वे हिन्दू मुसलमान दोनों को एक समझते थे इसलिये वे न हिन्दू थे न मुसलमान ! किन्तु हमें यह देखना चाहिये कि उस समय की मुसलमान सत्ता में हिन्दू सुधारक की इससे भिन्न कोई स्थिति हो ही नहीं सकती थी । क्योंकि मुसलमान अपने को 'खुदा' के बन्दे कहते थे और अन्य लोगों को तुच्छ समझते थे । मनुष्यों की समानता का प्रचार करना मुस्लिम सत्ता पर आक्रमण करने के समान ही था ।

गुरु नानक जी के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी क्रमशः

अंगद जी, गुरु अमरदास जी, गुरु रामदास जी, गुरु अर्जुन जी हुए। गुरु अर्जुन जी का बलिदान इस महान-यज्ञ की पहली आहुति के समान था। उनके पुत्र गुरु हरगोविन्द ने सिखों को क्षत्रियत्व का पाठ पढ़ाकर उन्हें सैनिक जाति में परिवर्तित कर दिया। पश्चात् गुरु-गद्दी क्रमश: गुरु हरराय जी गुरु हरकिशन जी और गुरु तेगबहादुर जी को मिली। गुरु तेगबहादुर ने हिन्दुओं में साहस और निर्भयता का संचार करने के लिए अपने को धर्म-बलिदान की वेदी पर चढ़ा दिया। गुरु गोविन्दसिंह ने इसे यों वर्णन किया:—

कीनो बड़ो कलू में साका।
तिलक जनेऊ राखा प्रभुताका।।

अर्थात् कलियुग में भारी साका यह किया कि प्रभु तेगबहादुर ने तिलक जनेऊ की रक्षा के निमित्त आपने आपका बलिदान कर दिया।

गुरु तेगबहादुर जी के पश्चात् उनके पुत्र गुरु गोविन्दसिंह जी गुरु के रूप में गुरु-गद्दी पर बैठे। ये बड़े चतुर और रणकुशल योद्धा थे। इन्होंने अपने धार्मिक आंदोलन को पूर्ण सामरिक रूप दे दिया। आपने पिछले इतिहास का मनन किया। आपने देखा कि कई सौ वर्षों से उत्तर पश्चिम से निरन्तर मुसलमानों के आक्रमण हो रहे हैं। गुरु गोविन्दसिंह ने अपने प्रयत्नों द्वारा आक्रमणों के प्रवाह को उलट दिया। उनके पश्चात् हिन्दू सीमांत अफगानिस्तान पर आक्रमण करने में समर्थ हो सके। ये वे ही हिन्दू थे जो शताब्दियों तक बर्बर यवन शक्ति से पददलित होते रहे थे। जिनको यवन लोग कभी आखेट की चिड़िया कहते थे। वही चिड़िया उन बाजों को अब बिलाव

दृष्टिगोचर हो रही थी। किन्तु यह सब हुआ कैसे ? इस महान् एवं अद्भुत कौतुक को प्रदर्शित करने वाले गुरु गोविन्दसिंह ही थे। इन्होंने कहा था :—

चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊँ।
तभी नाम गोविन्दसिंह पाऊं ॥

यही इन्होंने कर दिखाया । महाराजा रणजीत सिंह की सेना नौशेरा के रणक्षेत्र में काबुल के सेनापति अजीमखां की एक लाख चुने हुए पठान वीरों की सेना को पराजित ही नहीं किया, किन्तु इस प्रकार पददलित कर डाला कि कुछ गिने चुने पठान ही भाग कर प्राण बचा सके। इसके पश्चात् भी हरिसिंह नलवा ने पठानों को ऐसी मार लगाई कि उनके नाम-मात्र से काबुल के बच्चे भय से थर थर कांपते थे।

कई लोग स्वार्थवश यह कहते सुने गये हैं कि सिख-पंथ हिन्दू-धर्म से भिन्न मत है । यह धारणा भ्रम-मूलक है। हम सिख गुरुओं के जीवन पर दृष्टिपात करेंगे तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि ये देशों गुरु हिन्दू-धर्म की रक्षा करने वाले हिन्दुत्व के जगमगाते सितारे थे। वे हिन्दू-धर्म के लिए ही जन्मे और उसी के निमित्त उन्होंने अपने जीवन अर्पण किये । उनकी सेना में आर्य-रक्त प्रवाहित था। हिन्दू-संस्कृति की गोद में लालित पालित, हिन्दू-धर्म व इतिहास की शिक्षा-दीक्षा करने वाले, हिन्दू भूमि को "स्वर्गादपिगरीयसि" मानने वाले हिन्दू के अतिरिक्त और कौन हो सकते हैं ? हिन्दू-धर्म के विरोधियों अथवा स्वार्थी लोगों के द्वारा किए गए इस प्रकार के प्रचार की सर्वथा उपेक्षा तथा प्रतिकार करना प्रत्येक हिन्दू-धर्मी का कर्तव्य है । हम अपने धर्म के वास्तविक तत्वों को समझें। सनातनी, बौद्ध, आर्यसमाजी, जैन,

सिख आदि एक ही आर्य (हिन्दू-धर्म) की भिन्न २ शाखायें हैं। अपने २ सिद्धान्तों का पालन करते हुए भी ये सब मिलकर एक सुदृढ़ संगठन का निर्माण कर सकते हैं। सोते रहने का समय अब नहीं रहा। अब तो जागरण-वेला आगयी है। वेद की इस वाणी का स्मरण करें :—

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः॥

जागो, उठो, अच्छे कार्यों में लगो जिससे देश में, समाज में भूति, विभूति आवें और सब थकावट व्यथा को दूर करके मन में, दृढ़ निश्चय बांधो, हमारा निस्वार्थ सत् लक्ष्य अवश्य ही सिद्ध होगा।

प्रथम गुरु

श्री गुरु नानक जी

भारत में कौन ऐसा हिन्दू होगा जो सिख-पन्थ के संस्थापक हिन्दू-धर्म- रक्षक गुरु नानक जी के नाम से परिचित न हो। गुरु नानक का जन्म सम्वत् १५२६ कार्तिक पूर्णिमा को पंजाब के तलवण्डी नामक स्थान पर, जो ननकाना साहिब के नाम से प्रसिद्ध है, मेहता कालूराम पटवारी के घर माता तृप्ता देवी से हुआ।

गुरु नानक बचपन से ही बड़े होनहार प्रतीत होते थे। उन की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। बाल अवस्था में ही नानक वेदान्त विषयक ऐसे तर्क करते थे कि बड़े-बड़े विद्वानों को आश्चर्य होता था।

नानक जी का आठ वर्ष की अवस्था में उपनयन संस्कार कराया गया। नानक रात-दिन ईश्वर भजन में मग्न रहा करते थे। वे एकान्त में रहते और शान्तचित्त रह कर अपना समय व्यतीत करते थे। सांसारिक झंझटों में उनका मन नहीं लगता था। यहाँ तक कि खाने पीने की ओर भी वे अधिक ध्यान नहीं देते थे। कभी कभी कई दिनों तक कुछ भी नहीं खाते थे।

सम्वत् १५३[illegible] के वैशाख महीने की बात है कि एक दिन नानक जी जंगल में पशुओं को चरा रहे थे। गर्मी की ऋतु थी। पशु पक्षी ठण्ढी छाया के आश्रय में विश्राम करने लगे। नानक जी एक पेड़ की छाया में विश्राम करने लगे। उन्हें नींद आ गई। वे बहुत देर तक

सोते रहे । वृक्ष की छाया इतनी हट गई कि धूप के कारण उनका मुँह पसीने से तर हो गया, किन्तु नींद न खुली ।

इतने में एक बड़ा सर्प वहां आया और नानक जी के सिरहाने बैठकर उसने अपना विशाल फन फैला दिया । नानक जी के मुँह पर छाया हो गयी । नानक जी प्रगाढ़ निद्रा में थे । रायबुलार (गांव का सूबेदार) किसी कार्यवश उधर जा निकला । उसकी दृष्टि इस पेड़ की ओर जाते ही वह खड़ा होकर चकित सा दृश्य देखने लगा । एक पुरुष निद्रावस्था में है । सर्प ने अपने फन से उसके मुख पर छाया की है। उसने सोचा सोने वाला आवश्य ही कोई चमत्कारी पुरुष है । वह निकट जाने लगा तो सर्प वहाँ से चला गया । निकट आने पर उसके आश्चर्य का पारावार न रहा जब उसने देखा कि सोने वाला और कोई नहीं, कालूराम का पुत्र नानक है ।

नानक ईश्वर-स्मरण में अधिक समय देने लगे । किसी से बोलते भी नहीं थे । उनका शरीर भी पहले से दुर्बल दिखाई देने लगा । यह देख कर माता पिता ने समझाया । नानक से कहा—"पुत्र ऐसे कब तक निठल्ले पड़े रहोगे । उठो ! खाओ, पियो, पहनो, ओढ़ो और प्रसन्न रहो । यदि घर में जी न लगे तो अपनी खेती बाड़ी देख आया करो । खेत पकने पर आ गये हैं, हमें अवकाश नहीं जो देख भाल रखें ।"

नानक ने कहा—"पिता जी ! आपकी खेती तो आपके लिये है, मैंने भी अपने लिये एक नई खेती बोई है और वह अच्छी लगी है ।"

कालू ने कहा—"तेरी वह खेती कहाँ है, हमने तो नहीं देखी"

नानक ने कहा—"पिता जी ! वह खेती यह है। इस शरीर रूपी खेत में सत्कर्मों का हल चला कर परमात्मा के भजन-रूपी बीज को मैं ने बोया है। साधु संगति का इस में पानी देता रहता हूं। इस खेती में मैंने सन्तोष रूपी खाद भी दिया है। वह घर धन्य है जहां ऐसी खेती होती है।"

वेदी कालू ने जान लिया कि नानक पर दूसरा रंग चढ़ गया है। अतएव उसने बातों को टालकर खेत पर जाने का आग्रह किया। पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना अधर्म समझकर नानक ने खेत पर जाना स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन वे खेत पर गए, किन्तु वहाँ एकांत स्थान पाकर परमात्मा के भजन में निमग्न हो गये। उन्होंने पक्षियों को खेत में अन्न खाते देखकर उन्हें उड़ाना अनुचित समझा और प्रसन्नता पूर्वक हाथ उठाकर जोर-जोर से कहने लगे—

"रामदी चिड़िया राम दा खेत।
छक्को चिड़ियो भर भर पेट॥"

अर्थात् "अरी चिड़ियों ! तुम परमात्मा की ही हो और यह खेत भी उसी का है, पेट भर-भर कर खाओ !" पड़ोस के किसान ने यह वार्ता कालूवेदी को जाकर कही कि आपका पुत्र चिड़ियों को तो नहीं भगाता था, किन्तु खेत में खड़ा होकर कहता था 'अरी चिड़ियों ! सब माया भगवान की है, खूब आनन्द पूर्वक अपना पेट भरो।" कालूवेदी ने दूसरे ही दिन से नानक को खेत पर जाने से रोक दिया।

कुछ दिन पश्चात् कालू ने नानक से कहा—बेटा ! ऐसे कब तक काम चलेगा, कुछ व्यापार-वाणिज्य किया कर, जिस से कुछ धन

हो और मुझे सहारा हो।" नानक ने इस आज्ञा को शिरोधार्य कर लिया। तब कालू राम ने २०) रुपया नानक को देकर कहा-' इस से कोई ऐसा काम करना जिसके द्वारा तुम्हें लाभ हो। साथ में अपने नौकर बाला को कर देता हूँ, वह समझदार है। वह कोई अच्छा व्यापार आरम्भ करा देगा कि जिस से तुम्हें अधिक लाभ हो।

तदनुसार नानक जी और बाला व्यापार के लिये लाहौर की और चल पड़े। जब वह चूहड़-काणे के निकट जंगल में पहुंचे तो नानक ने देखा कि कुछ निर्वाणे साधु तपश्चर्या कर रहे हैं। वे वहां पहुंचे। वहीं पर कुछ दिन ठहर कर सत्संग का आनन्द उठाने लगे। मन में विचार किया की साधुओं को खिलाने पिलाने से अच्छा और क्या व्यापार होगा। आपने वे २०) रुपये साधुओं के भोजन में उठा दिये। इस साधु-संग से नानक पर प्रभाव पड़ा। नानक वहाँ से वापिस तलवन्डी की ओर चल दिये। किन्तु अपने पिता के डर से घर नहीं गये। ग्राम से बाहर एक सूखे तालाब में छुप कर बैठे रहे। बाला ने कालूवेदी को सारी वार्ता सुनाई।

कालू बाला को साथ लेकर नानक को ढूंढ़ने निकले। उस सूखे तालाब में नानक जी मिल गये। कालू ने झपट कर नानक जी को पकड़ लिया और दाँत पीसते हुए पूछा-"अरे ! रुपये कहां हैं ?" नानक जी चुप रहे। तब कालू ने नानक जी को बहुत मारा। अन्त में नानक की बहिन नानकी ने बीच में पड़ कर नानकजी को छुड़वाया।

इस घटना के पश्चात् नानक जी का ध्यान साधु-संगति की ओर अधिक झुक गया। उनको जो कोई साधु मिलता उसकी बड़े प्रेम से

सेवा करते। बहुधा उनसे वेदान्त विषयक चर्चा किया करते थे। अतः इनके पिता इनके ऐसे व्यवहार से असन्तुष्ट रहते थे। अन्त में नानकजी अपने बहनोई जयराम के पास कपूरथले चले आये। इनके बहनोई ने इनको नवाब लोधीखां के वहां मोदीखाने का निरीक्षक नियत करा दिया।

नानक जी मोदीखाने का काम बड़ी अच्छी तरह चलाने लगे। साथ ही साधु-सन्तों, फकीरों, निर्धनों, अनाथों, अपाहिजों और विधवाओं को मुंहमांगा अन्न-वस्त्र देने लगे। उनके द्वार पर भिक्षुओं की सदा भीड़ लगी रहती थी। नानक जी की कीर्ति चारों ओर फैलने लगी, किन्तु साथ ही नवाब के भी कान भरे गये कि नानक आपका मोदी खाना लुटा रहा है। निदान नवाब ने अपने आदमी को भेजकर मोदी खाने के हिसाब की परीक्षा करवाई, किन्तु यह सुनकर सब को आश्चर्य हुआ कि हिसाब में ३००) रुपये नानक जी के नवाब की ओर निकले। इससे नवाब नानक जी पर अधिक विश्वास करने लगे।

गुरु का विवाह १९ वर्ष की अवस्था में पक्खो ग्राम, जिला गुरदासपुर निवासी मूलाराम पटवारी की लड़की से सं० १५५१ वि० में हुआ। गृहस्थ होने पर भी आप विरक्त रहे। आपके दो पुत्र हुए, प्रथम उदासी मत के प्रवर्तक श्रीचन्द जी और दूसरे श्री लक्ष्मीदास जी।

कहते हैं कि एक बार नानक जी रात्रि के समय सुलतानपुर के निकट एक नहर में स्नान कर रहे थे। स्नान करते २ वे भगवद्भक्ति में इतने मग्न हो गये कि उनको अपने शरीर की सुधि न रही। इस

बीच में उन्हें इस प्रकार प्रेरणा हुई–' मेरे प्यारे नानक ! जिस काम के लिये संसार में उत्पन्न हुआ है, वह कब करेगा ? इस माया-मोह को एवं सांसारिक बन्धनों को तोड़ कर अपने भूले भटके भाइयों को सीधा मार्ग दिखा।"

तत्पश्चात् नानक घर नहीं लौटे। उन्होंने साधु-वेश बना लिया। अनेक लोगों ने नानक को समझाने का प्रयास किया। किन्तु नानक अपने निश्चय पर अटल रहे।

गुरु नानक के साथ उनका एक मुसलमान शिष्य भी रहता था जो गुरु साहब की बड़ी सेवा किया करता था और उनके चरणों में बड़ा प्रेम रखता था। उनका नाम मरदाना था।

गुरु जी का स्वभाव अत्यन्त नम्र, दयालु और सौम्य था। आपकी वाणी में अद्भुत शक्ति थी। जिससे बातचीत करते थे उसका हृदय उनके प्रति खिंच जाता था। तलंबा के शेख सज्जन नामक एक ठग ने गांव के बाहर जंगल में रास्ते के किनारे एक मन्दिर और एक मस्जिद बनवा रखी थी। कोई हिन्दू यात्री आता तो वह उसे मन्दिर में और मुसलमान आता तो मस्जिद में ठहराता था। रात में यात्री के सो जाने पर वह उसे मार कर कूएं में डाल देता था तथा उसका धन हथिया लेता था। प्रातः फिर माला लेकर बगुला भक्त बन कर बैठ जाता था। गुरु नानक अपने शिष्य बाला के साथ पर्यटन करते हुए उधर निकले। सज्जन ने बड़ी आवभगत के साथ उन्हें मन्दिर में ठहराया। रात्रि में नानक

जी सोये नहीं ।। उन्होंने एक भजन गाया। सज्जन ठग भजन को सुनते ही गुरु नानक देव जी के चरणों में आ गिरा और अपने अपराधों की क्षमा मांगने लगा। उसने कहा—"महाराज मैंने असंख्य मनुष्यों का वध किया है।" नानक जी ने कहा "अच्छा, जो द्रव्य आदि तूने अब तक एकत्रित किया है, उसे लाकर परमात्मा के नाम पर गरीबों को लुटा दे।" सज्जन ने ऐसा ही किया। पश्चात् वह नानक जी का शिष्य बन गया। उसका पापी जीवन पवित्र हो गया। वह राक्षस से देवता बन गया। इसी प्रकार जालन्धर का मिश्र रूपलाल जो बड़ा अन्यायी था, नानक जी के उपदेश द्वारा उसकी भी काया पलट हो गयी। यह है महा पुरुषों की वाणी का प्रभाव।

नानक ने सारे भारतवर्ष की यात्रा करते समय प्रायः सभी हिन्दू तीर्थ-स्थानों में ठहर कर उपदेश दिया। जहां २ आप गये वहां वहां एक दो धर्मशालाएं अवश्य बनवा दीं। प्रयाग, जगन्नाथ, बनारस, रामेश्वर में धर्मशालाएं आप की याद दिला रही हैं।

आपके द्वारा वेदान्त-शिक्षा का अधिक प्रचार हुआ। आप मन, वचन कर्म में एक थे। जो मन में होता था वही कहते थे, वही करते थे। आप ने विदेशों में भी भ्रमण किया। दूसरे धर्म वालों में आपने वर्षों बिताए, किन्तु वहां भी आर्य-सत्य सिद्धान्तों का प्रचार करने में नहीं चूके। अरब अफगानिस्तान और फारस (पारस्य) आदि देशों में आपने अपने सिद्धान्तों का खूब प्रचार किया। आप मक्का भी गये थे। वहां काबा के निकट ही सो गये। दैवयोग से उनके पैर काबा की ओर हो गये।

प्रातः मुसलमानों ने देखा तो वे क्रोध पूर्वक नानक से कहने लगे:—

"अरे तू कैसा उद्दण्ड और बेअदब है कि खुदा के घर की ओर पांव करके सो रहा है।"

नानक ने नम्रतापूर्वक कहा—भाई ! नाराज क्यों होते हो? तुम कृपा करके मेरे पैर उस ओर कर दो जिस ओर खुदा न हो।" बेचारे मुसलमान बड़े लज्जित हुए। वहां के काज़ी ने भी आकर अनेक प्रश्न नानक जी से किए। उनके उत्तर सुनकर वह चकित हो गया। उसे निश्चय हो गया कि यह अवश्य ही कोई औलिया फकीर है। इसे छेड़ना उचित नहीं।

नानक जी ने मक्का से मदीना, बगदाद, हलब, इस्पहान, तातार काबुल, कंधार, होते हुए हसन अब्दाल की हरी-भरी पहाड़ी पर आकर कुछ दिन विश्राम किया। इस पहाड़ पर मीठे पानी का एक झरना भी था। जिसके पास यारअली नामक एक मुसलमान फकीर रहता था। यह फकीर दुष्ट प्रकृति का था। वह किसी प्यासे मनुष्य को झरने से पानी नहीं लेने देता था।

गुरु नानकजी ने अपने तपोबल से इस झरने के प्रवाह की दिशा बदल दी। अब यह झरना ऊपर न बह कर गुरु नानक जी के आसन के पास बहने लगा। देखकर यारअली बड़ा क्रुध हुआ। वह नानक जी को हानि पहुंचाने का उपाय सोचने लगा।

एक दिन नानक जी बाला के साथ अकेले बैठे थे। यारअली फकीर ने पहाड़ी पर से एक बड़ा सा पर्वत-खण्ड नानक जी को मार देने की इच्छा से उनकी ओर लुढ़काया। नानक जी ने पत्थर को आते देख अपने हाथ से रोक दिया। उस पर नानक जी के हाथ के पंजे

का चिन्ह हो गया। यह चिन्ह अब तक विद्यमान है। प्रति-वर्ष हजारों मनुष्य इस स्थान के दर्शन के लिये यहां पहुँचते हैं। वहां बड़ा मेला लगता है। यह स्थान पंजा साहब के नाम से प्रसिद्ध है।

अपने कार्य की असफलता तथा नानक जी का चमत्कार देख कर यारअली बड़ा ही लज्जित हुआ और गुरु नानक के चरणों में आ गिरा। गुरु नानक ने उसे क्षमा कर दिया। यारअली ने नानक जी को अपना गुरु बना लिया।

गुरु नानक जी ईश्वर के पूर्ण भक्त थे। आप ईश्वर को शुद्ध बुद्ध और सर्वज्ञ मानते थे। आपने जाति-बन्धन, ऊँच-नीच का भेद भाव तोड़ दिया था। आप वर्ण व्यवस्था को गुण-कर्मानुसार ही मानते थे। आपका उपदेश था कि सुरतयोग के अभ्यास से परम-शान्ति प्राप्त होती है। ज्ञान, भक्ति और योग के द्वारा मनुष्य को जीवन का परम उद्देश्य प्राप्त हो सकता है। आप गुरु-भक्ति पर अधिक जोर देते थे। वेदान्त प्रचारक जितने भी महात्मा हुए हैं, सभी ने गुरु-भक्ति, गुरु-सेवा और गुरु-पूजा को अत्यधिक महत्व दिया है। गुरु नानक जी एक ईश्वर को मानते थे। नानक जी कर्म और पुनर्जन्म को भी मानते थे। वे अवतारों के सिद्धान्त को भी मानते थे। किन्तु उन्होंने सबसे अधिक महत्व योग को दिया है।

गुरु नानक जी अन्य सन्तों की वाणियों को भी बड़े प्रेम से अपनाते थे। यही कारण है कि आदि ग्रन्थ-साहिब में कबीर, रैदास, मीरा बाई आदि प्रसिद्ध भक्तों की वाणियां भी सम्मिलित हैं।

गुरु-ग्रन्थ साहिब पंजाबी भाषा में है, किन्तु उसके अनेक भजन

हिन्दी में हैं। गुरु नानक जी प्रायः हिन्दी में कविता किया करते थे। आपने अपनी गद्दी अपने परमप्रिय सेवक लहना को जो पश्चात् गुरु अंगद साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए, सपुर्द की। शिष्यों को पूर्व सूचना देकर सं० १५९६ में ७० वर्ष की आयु में मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष की दशमी को आपने इहलौकिक लीला संवरण की।

—:o—

द्वितीय गुरु

श्री गुरु अंगद देव जी

श्री गुरु अगद जी का जन्म वैशाख ११, सं० १५६१ वि० में मतीं की सराय नामक ग्राम में हुआ। आपके पिता फेरूमल क्षत्रिय थे। आपकी माता का नाम शुभराई जी था। आपका विवाह खड्डर साहब में भाई देवीचन्द खत्री की सुकन्या जीवी बीबी के साथ हुआ, जिससे आपको चार सन्तान, दो पुत्र तथा दो कन्याएँ हुईं।

आपका पहला नाम भाई लहिणा जी था। आप दुर्गा जी के बड़े भक्त थे और दिन-रात उसी की उपासना किया करते थे। खड्डर साहब में भाई जोधा जी नाम के गुरु नानक जी के प्यारे एक सन्त रहा करते थे। उन्हीं के सत्संग से आपको भी गुरु नानक जी के दर्शन की उत्कण्ठा हुई। एक बार जब कि आप दूर्गा जी के दर्शनार्थ यात्रा कर रहे थे तो उन्हीं की प्रेरणा से मार्ग में रावी नदी के तट पर कर्तारपुर में गुरु नानक जी के दर्शनार्थ ठहर गये। वहाँ आपने गुरु

नानक जी के दर्शन किये और उनके बचनामृत का पान किया। कहते हैं कि गुरु नानक जी के अलौकिक चमत्कार ने उन्हें इतना आकर्षित किया कि आप गुरु के परम भक्त बन गये और निष्काम सेवा एवं श्रद्धा भक्ति से कुछ ही दिनों में गुरु के हृदय में स्थान पा उनके सबसे प्रधान शिष्य बन गये। फलत: गुरु नानक जी ने अपनी गद्दी अपने दोनों पुत्रों को न देकर परमप्रिय शिष्य अंगद को प्रदान की।

गुरुपद पर अभिषिक्त होने पर आपने खडूर में आकर तालाब के किनारे कठोर तपस्या की। भोजन की मात्रा भी अति सूक्ष्म कर दी। यहां तक कि दिन में कभी थोड़ा दूध पी लेते थे। तपस्या का यह स्थान अब "तपाना साहिब" के नाम से प्रसिद्ध है।

आपने सं० १५०८ वि० में गुरुमुखी अक्षरों की रचना की। इससे पहिले लिखने के लिए नागरी लिपि ही काम में लाई जाती थी। अब नई लिपि बनाकर आपने गुरु नानक जी की समस्त वाणी तथा उनके उपदेश और उनकी प्रकृति के सम्बन्ध में स्वयं जो अनुसंधान किया था वह सब अंकित करके गुरु नानक जी की जन्म-राखी नामक ग्रन्थ की रचना की। सिक्खों में अब भी इसका बड़ा आदर है।

दूसरा सुकार्य आपने यह किया कि सिक्ख सम्प्रदाय में लंगर' (भंडार) की रस्म चलाई। 'लंगरखाने' का द्वार सब के लिये खुला रहता था। जात-पांत का कुछ विचार नहीं था। जो आता, आनन्द से भोजन पाता और आत्मोत्सर्ग के उपदेश सुनता था।

एक बार बादशाह हुमायूँ शेरशाह से हार कर गुरु अंगद जी की ख्याति सुनकर उनके पास सहायतार्थ आया। गुरु साहब ध्यान-मग्न थे।

हुमायूँ ने समुचित आदर न होते देख क्रुद्ध हो तलवार खींच ली। दैवात् उसी समय इनकी आँखे खुल गयीं आपने हँसकर कहा—'सज्जन ! शेरशाह के आगे आपकी यह तलवार कहां चली गई थी ? शत्रुओं के सम्मुख तो आपकी तलवार म्यान में रहती है और संसार-त्यागी साधुओं के लिये बाहर आती है । क्या तलवार तुम को इस लिए दी गई है ?"

गुरु अंगद जी गुरु नानक जी के समान ही उदार थे। वे बाल्यकाल से ही धीर गम्भीर थे। साधु महात्माओं में प्रगाढ श्रद्धा थी। उन्होंने अपनी आयु का बहुत बड़ा अंश साधुओं की सेवा में व्यय किया, यहां तक कि किसी याचक को आप ने निराश नहीं लौटाया। जब कभी आप किसी की सहायता करने में असमर्थ होते थे, तो आप को उसके लिए बहुत दुःख होता था। आपने कभी भी मन, वाणी या कर्म से किसी का अहित नहीं किया।

गुरु अंगददेव अपने अनुयायियों को कहते थे कि सावधान, कभी किसी के पैसे पर आंख न लगाओ। बेगाना धन खाना पाप है। भिक्षुक न बनकर व्यवसायी बनो। सेवा को आप बहुत महत्व देते थे। गुरु अंगद जी में कितनी गुरु-भक्ति तथा गुरु-सेवा-भाव विद्यमान थे—निम्न वृत्तांत से स्पष्ट है।

एक बार गुरु नानक जी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीचन्द को बुला कर कहा "पुत्र, तुमको किस वस्तु की अभिलाषा है ?" इन्होंने कहा—"ईश्वर भक्ति की"। नानक जी ने प्रसन्न होकर अशीर्वाद दिया और कहा—"जा तू ईश्वर भक्त होगा"। पश्चात् द्वितीय पुत्र लक्ष्मीचन्द

को याद किया और वही प्रश्न किया। इसने उत्तर दिया—"मुझे ऋद्धि-सिद्धि की अभिलाषा है।" नानक जी हँसे, "अच्छा जा तेरे वंश में ऋद्धि-सिद्धि रहेगी।" तदनन्तर अंगदजी को बुलाया "तुम्हें क्या चाहिए ?" इन्होंने मस्तक नवाकर कहा, 'दीनबन्धु ? मैं गुरु की सेवा तथा गुरु के सेवकों की सेवकाई चाहता हूँ. इसलिये कि सबके चरणों की सेवा करके मन पवित्र करूं।"

नानक जी का हृदय गद्गद् हो गया। नेत्रों से प्रेमाश्रु बह निकले। "पुत्र ईश्वर तेरी अभिलाषा पूर्ण करे। जो ईश्वर के बन्दों की सेवा करता है, वह बड़ा है उसकी आज्ञा सब को शिरोधार्य है, सेवा ही भक्ति है, सेवा ही तप है।"

गुरु अंगद जी अर्धरात्रि व्यतीत होने पर उठते थे और स्नानादि से निवृत्त हो जप स्मरण के लिये बैठ जाते थे। दोनों समय, सायं प्रातः दरबार लगता था। हजारों भक्त एकत्र होते थे। शरीर को आराम देने का कभी स्वप्न में भी इस धर्मात्मा को विचार नहीं हुआ। आपको कविता से भी प्रेम था। ग्रन्थ साहब में आप की बहुत कम कविताएं सम्मिलित हैं, परन्तु जो कुछ हैं वह अति प्रतिभायुक्त एवं प्रभावोत्पादक हैं।

गुरु साहब के दो पुत्र थे। 'दासू' और 'दत्तू'। किन्तु ये गद्दी के योग्य नहीं थे। अतः इन्होंने गुरु अमरदास जी को अपनी गद्दी प्रदान की। संवत् १६०६ वि० में ४७ वर्ष की अवस्था में आपने शरीर त्याग किया।

तृतीय गुरु
श्री गुरु अमरदास जी

श्री गुरु अमरदास जी सिखों के तीसरे धर्म-गुरु थे। इनका जन्म बासर ग्राम में सं० १५३६ वि० वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को भाई तेजभान भल्ला खत्री के घर में हुआ। इनका विवाह भाई देवीचन्द बहल खत्री की कन्या रामकुंवर से ११ माघ सं० १५५२ वि० में हुआ। इनके चार संतानें हुईं, दो पुत्र और दो कन्यायें।

गुरु अमरदास जी बड़े ही पुरुषार्थी थे। कहते हैं कि आपने २१ बार नगे पांव पैदल जाकर गंगा-स्नान किया था। आपको योगविद्या से अति प्रेम था। साधुओं में बड़ी श्रद्धा रखते थे, किन्तु ६२ वर्ष की अवस्था तक आपने किसी को अपना पथ-प्रदर्शक गुरु नहीं बनाया था। इतनी अवस्था तक जो करते रहे वह स्वेच्छा से ही।

एक बार आप गंगा-स्नान करके आ रहे थे। रास्ते में एक उद्यान में लेट कर रास्ते की थकान दूर करने लगे। पण्डित दुर्गादास ज्योतिषी नाम के एक विचारवान् ब्राह्मण भी उनके साथ थे। अकस्मात् दुर्गादास जी की दृष्टि गुरु अमरदास जी के पांव के तलुवे पर पड़ी और वह झट बोल उठे—"अमरदास! आपके पांव के तलुवे के चिन्ह बतला रहे हैं कि आपको राजा होना चाहिये।" आपने उत्तर दिया "जो ईश्वर की इच्छा होगी वही होगा।" कुछ समय पश्चात् गुरु अमरदास जी पण्डित दुर्गादास को खाने के निमित्ति मिठाई देने लगे। यह देखकर

दुर्गादास जी बोले, "अमरदास जी ! पहिले यह बतलाइये कि आपका गुरु कौन है ?" गुरु रामदास जी बोले—"गुरु तो अभी तक किसी को नहीं बनाया ।" यह सुन कर दुर्गादास जी अति अप्रसन्न हुए और कहने लगे, "तो हम आपके हाथ की मिठाई क्या, पानी भी नहीं पी सकते । क्योंकि आपका गुरु कोई भी नहीं है । पण्डित जी के इन वाक्यों का गुरु अमरदास जी पर गहरा प्रभाव पड़ा । वे गुरु की खोज करने लगे । अनेक साधुओं के पास गये, श्रद्धा भक्ति से मिले, किन्तु किसी के द्वारा उनको शांन्ति नहीं हुई । अन्त में निराश हो घर चले आये । किन्तु गुरु प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा पूर्ववत् बनी रही । घ्येय की इसी अटूट निष्ठा के प्रभाव से अन्त में उनको गुरु की प्राप्ति इस प्रकार हुई ।

प्रातःकाल की मन्द-मन्द वायु बह रही थी । गुरु अमरदास जी निद्रा परित्याग कर उठ बैठे थे । हवा के मन्द मन्द झोंकों में कुछ गाने की ध्वनि आ रही थी । वे ध्यान से सुनने लगे । यह मनोहारिणी वाणी सुनकर आप आनन्द में मग्न हो गये । अन्त में आप से न रहा गया । गाने वाले की खोज करने चले । किन्तु यह जान कर उन्हें अति प्रसन्नता हुई कि गाने वाली उनके भतीजे की बहू ही है, जो कि गुरु अंगद जी की लड़की है ।

अमरदास जी ने कहा "पुत्री, मुझे भी इच्छा हो रही है, कि मैं भी गुरु के दर्शन करूं ।" वह बोली—"वहां तो हर समय दरबार लगा रहता है । धर्म-पिपासा शान्त करने के लिये हजारों भक्त वहाँ आते रहते है । आप भी शीघ्र ही उनके दर्शन का लाभ करिये ।"

अमरदास जी गुरु अंगद जी के दर्शनों को गये और गुरु

को देखते ही उनके चित्त में भक्ति-भाव जाग उठा। उन्होंने गुरु के चरणों में मस्तक नवाया। धीरे धीरे गुरु के प्रभाव से अमरदास जी के संशय दूर होने लगे और उन्होंने गुरु की अत्यधिक सेवा करके गुरु-सेवा का आदर्श चरम सीमा तक पहुँचा दिया।

वृद्ध गुरु अमरदास जी नित्य प्रातः उठ कर तीन कोस दूर व्यास नदी से भारी गागर भरकर गुरु अंगददेव जी के स्नानार्थ लाते। नदी को जाते समय उबटे पांव चलते थे, जिससे कि गुरु जी की ओर पीठ न हो जाय। १२ वर्ष तक इसी प्रकार की दिनचर्या रही। वे निरन्तर गुरु सेवा में ही लगे रहते थे।

एक बार रात्रि में घनघोर वर्षा हो रही थी। रास्ता सब पानी से भरा हुआ था, नदी भी चढ़ी हुई थी। अर्धरात्रि व्यतीत होने पर वृद्ध अमरदास उठे और अंधेरे में टक्करें खाते हुए नदी पर पहुँच गए। नदी के किनारे धमाक २ ध्वनि करते हुए गिर रहे थे, किन्तु गुरुभक्ति में मस्त अमरदास जी को इससे कोई झिझक नहीं हुई। नदी से पानी भरकर लौट रहे थे कि रास्ते में एक जुलाहे की खड्डी में धड़ाम से जा गिरे। चोट आपको बहुत लगी पर गागर को न गिरने दिया। धमाके के शब्द से जुलाहा चौंक पड़ा और जुलाहिन से बोला कि 'देख तो, कैसा शब्द है, कौन गिरा है खड्डी में'! जुलाहिन ने कहा, "अनाथ अमरू के सिवा इस समय और कौन उठने वाला है, वही नित्य व्यास नदी से पानी लेकर आया करता है, वही गिरा होगा।"

गुरु अंगदजी ने भी जुलाहा-जुलाही का संवाद सुना। प्रातः काल जब दरबार लगा तो गुरु अंगद ने यह सम्पूर्ण वार्ता दरबार

में कह सुनाई। उन्हों ने गुरु अमरदास को बुला हृदय से लगाया और गद् गद् वाणी से सब को सुना कर कहा, सुनो यह अमरू आज से अमरदास है। तत्पश्चात् उन्हों ने बाबा बुड्ढा जी को बुलाकर उनसे गुरु अमर दास जी को टीका लगवा कर उन्हें अपना उत्तराधिकारी नियत कर दिया।

गुरु अमरदास जी के ठोकर लगने के स्थान पर बना हुआ विशाल गुरुद्वारा आज भी गुरु-भक्ति का प्रकाश चारों दिशाओं में फैला रहा है।

गुरु अमरदास जी ने व्यास नदी के तट पर गोयंदाज नामक नवीन ग्राम बसाया और वहीं रहने लगे। आप ने यह नियम बना लिया था कि नित्य गोयंदाल से खाण्डोर साहिब आते, अपने गुरु साहिब के डेरे के दर्शन के पश्चात् उल्टे कदम चलकर अपने निवास स्थान पर आ जाते थे।

आप से अनेक प्रसिद्ध मुसलमान फकीर मिलने आया करते और सत्संग का आनन्द उठाते थे, जिन में शेख मुहम्मद ताहरी, स० शाह बलावल, सैयद मुहम्मद मुहकमशाह, ख्वाजेवारी आदि उस समय के प्रसिद्ध फकीर थे।

बादशाह अकबर भी आप में श्रद्धा रखता था। एक बार बहुत सी अमूल्य वस्तुएं लेकर स्वयं बादशाह अकबर गुरु के दर्शन करने गोयंदाल आये थे। किन्तु उनकी वह अमूल्य भेंट गुरु ने तत्काल निर्धनों को बांट दी। अकबर ने १२ गाँव की जागीर भेंट देनी चाही, किन्तु गुरु के उत्तर से अकबर चकित हो गया। उन्होंने कहा—"हम फँसाने नहीं छुड़ाने आये हैं, हम दास नहीं बनाते, स्वतन्त्र रहना सिखाते हैं। जागीरदार बनकर गुरु घराना आधीन हो जायेगा और अपने उद्देश्य

को भुला बैठेगा। अ:त हमें आपकी जागीर का क्या करना है ?"

गुरु साहब ने गुरु नानक के प्रचारित सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये सारे प्रदेश को जिस में गुरु के शिष्य रहते थे, २२ भागों में विभाजित कर दिया और प्रत्येक भाग में अपना एक एक प्रतिनिधि निपुक्त कर दिया, जो गुरु जी के आदेशानुसार कार्य करने लगा। ये ही गुरुजी की सुप्रसिद्ध २२ मंजियें कहलाती थीं।

गुरु अमरदास जी ६२ वर्ष के थे तब गुरु अंगदजी के शिष्य हुए। बारह वर्ष तक सेवा करने के पश्चात् २२ वर्ष तक धर्म-प्रचार में लगे रहे उनके उपदेशों ने अनेकों तप्त आत्माओं को शांति दी।

संवत् १६२७ वि० में गुरु अमरदास ने अपने हाथ से गुरु गद्दी गुरु रामदास जी को सौंप दी और आप संवत् १६३१ वि० में सुरपुर सिधार गये।

चतुर्थ गुरु

श्री गुरु रामदास जी

गुरु रामदास जी का जन्म वि० संवत् १५७१ में लाहोर में भाई हरिदास जी के घर में माता दयाकौर जी के उदर से हुआ था। छोटी अवस्था में ही पहले माता का स्वर्ग-वास हो गया, तत्पश्चात् पिता जी चल बसे। अब ये अनाथ रह गये। वह देखकर इनकी नानी इन्हें अपने ग्राम में ले गयी और इनका पालन पोषण करने लगी। जब ये बड़े हुए तो नानी की अनुमति से चने उबालकर बेचने आरम्भ कर दिए और संयोगवश गोयंदाल में भी जहां गुरु अमरदास जी रहा करते थे, आने जाने लगे।

आप को साधुओं से अत्यन्त प्रेम था। आपने गोयंदाल जाकर जब

प्रथम बार गुरु अमरदास जी के दर्शन किये तब आप का मन आनन्द से प्रफुल्लित हो गया। उसी समय से आप गुरु सेवा में लग गये। कभी झाड़ू देते, कभी पंखा करते तथा लंगरखाने का प्रबन्ध करते थे। आप गुरु के सामने सर्वदा कर-बद्ध खड़े रहते थे।

गुरु अमरदास जी की कन्या भानी कुंवर जब विवाह योग्य हुई तो एक दिन इस की माता ने इस के विवाह का प्रसंग छेड़ा। गुरु साहिब तथा कुल पुरोहित भी वहीं थे। गुरु साहब ने कहा "अच्छा यह तो बताओ कि तुम को कैसा लड़का चाहिये।" माता जी ने उत्तर दिया— जैसा आप का सेवक रामदास है, बस इसी आयु और ऐसे ही गुण वाला लड़का उपयुक्त होगा।" गुरु ने मुस्करा कर कहा, 'बस हो गया जो होना था" पश्चात् उन्होंने रामदास को निकट बुला कर बड़े आदर से कहा, "बेटा! अब से तुम हमारे हो गये।" कुल पुरोहित से कहा, "इनकी नानी से जाकर कह दो कि अमरदास ने अपनी कन्या भानी कुंवर की मंगनी तुम्हारे दौहित्र से कर दी है और तुम आकर सगुन दे जाओ।' मंगनी हो गयी और कुछ दिन पश्चात् संवत् १६१२ वि० में भानी कुंवर का विवाह रामदास जी से कर दिया। विवाह पश्चात् भी रामदास जी के आचार, सेवा तथा भक्ति-भाव में तनिक भी अन्तर नहीं हुआ।

एक बार गुरु साहब ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेने की ठानी। आपके पुत्र मोहरी और सोहन भी वहीं उपस्थित थे। उन्होंने सब को बैठने के के लिये एक चबूतरा बना देने की आज्ञा दी। यह सुनकर सभी शिष्यों ने चबूतरे बनाए किन्तु गुरु साहब ने सब को गिरवा दिया। गुरु साहब ने फिर चबूतरे बनाने की आज्ञा दी। शिष्यों ने तथा गुरु-पुत्रों

ने फिर चबूतरे बनाये, किन्तु गुरु साहिब ने बनाये हुए चबूतरे गिरवा दिये । इस प्रकार गुरु साहब बार बार चबूतरे बनाने की तथा तत्पश्चात् उन्हें गिरा देने की आज्ञा देते रहे। किसी ने दो बार, किसी ने चार बार, किसी ने दस वार चबूतरे बनाए, किन्तु गुरु जी ने सभी गिरवा दिए। सारे शिष्य हतोत्साह हो कर बैठ गये। उन्होंने कहा कि आज गुरु साहब को क्या हो गया है ? उनके शिष्यों में से केवल रामदास जी ही ऐसे थे कि जो उसी उत्साह से इस कार्य में अब तक जुटे हुए थे। यद्यपि गुरु साहब ने इनके भी कितने ही चबूतरे गिरवा दिए थे, किन्तु इन्होंने चबूतरा बनाना नहीं छोड़ा और अपने कार्य में पूर्ववत् लगे रहे।

अन्त में गुरु जी ने इनसे पूछा "क्यों रामदास ! तुम तो अब तक इस काम में जुटे हुए हो अन्य लोग तो कभी के काम छोड़ भाग गये हैं।" रामदास जी ने नम्रता पूर्वक हाथ जोड़कर कहा 'शिष्य का एक मात्र कर्तव्य गुरु की आज्ञा पालन करना है। आज्ञा कापालन करते हुए जीवन तो क्या सर्वस्व भी त्याग करना पड़े तो वह भी न्यून ही है। सेवक का कल्याण प्रभु की सेवा के अतिरिक्त और कौन से कार्य में हो सकता है ? उसके जीवन की सार्थकता इसी में है।" गुरु साहब शिष्य का उत्तर सुनकर अति प्रसन्न हुए और उन्होंने रामदास जी को गुरु गद्दी पर बैठने की आज्ञा दी।

गुरु-गद्दी पर बैठ जाने के पश्चात् गुरु रामदास जी ने सबसे पहले और वर्णनीय जो कार्य किया वह है अमृतसर नगर की स्थापना।

जहाँ आज वर्तमान अमृतसर नगर है वहाँ एक बड़ा ही रम्य प्राकृतिक सरोवर था, जहाँ बहुधा गुरुनानक स्नान हेतु आया करते थे।

गुरु अमर दास जी ने रामदास जी को इस तीर्थ स्थान के उद्धार की प्रेरणा की और उनके द्वारा आषाढ़ शुक्ल पंचमी सं० १६२७ वि० को अमृतसर नगर की नींव रखा दी और इसका नाम रामदासपुर रख दिया। रामदास जी चाहते थे कि इसका नाम उनके गुरु अमर दास जी के नाम पर रक्खा जाय। अन्त में वही हुआ भी। अमृतसर सरोवर के कारण इसका नाम भी अमृतसर होगया।

अमृतसर का सरोवर न केवल सिक्खों का ही तीर्थ है अपितु हिन्दू-समाज उसको अपना तीर्थ मानते हैं। अनेक तो इसे महाराज रामचन्द्र जी के समय का सरोवर है, ऐसा मानते हैं। इसके विषय में अनेक किम्वदन्तियां है, किन्तु यह सत्य है, कि इस स्थान का गुरु अमरदास जी तथा गुरु रामदास जी के द्वारा पुनरुद्धार हुआ है।

गुरु साहब के तीन पुत्र थे—पृथ्वीराज, महादेव और अर्जुनदेव जिनमें सबसे बड़ा पृथ्वीराज था, किन्तु उसके विचार बड़े क्षुद्र थे। अपने भाइयों से वह द्वेष रखता था। उससे छोटा महादेव था। वह साधु स्वभाव का मनुष्य था। उसे निवृत्ति मार्ग प्रिय था। वह किसी से भी सम्बन्ध नहीं रखता था। वह दिनभर आत्म-विचार में ही निमग्न रहता था। सबसे छोटे अर्जुनदेव जी थे। वे सब से अधिक बुद्धिमान् एवं प्रतिभाशाली थे। उनमें आलस्य नाम को भी नहीं था, उनको ही गुरु रामदास जी ने सब प्रकार से गुरु-गद्दी के योग्य समझा और गुरु-गद्दी पर उन्हीं को बैठा दिया।

गुरु रामदास जी अमृतसर से गोयंदाल चले आये, जहाँ उन्होंने ४१ वर्ष की अवस्था में इहलौकिक लीला संवरण की।

पंचम गुरु

श्री गुरु अर्जुनदेव जी

आपका जन्म सं० १६३० वि० वैशाख शुक्ला सप्तमी को गोयंदाल में चौथे गुरु राम दास जी के घर माता भानी जी के उदर से हुआ था।

आपके दो विवाह हुए थे। पहला मोड़गांव के चन्दन दास खत्री की कन्या श्रीमती रामदेवी जी से तथा पिछली स्त्री के स्वर्गवास हो जाने पर दूसरा बिवाह कृष्णचन्द्र की पुत्री गंगा देवी के साथ सं० १६६४ वि० में हुआ। गुरु हरगोविन्द जी का जन्म इसी देवी के गर्भ से हुआ था।

गुरु अर्जुनदेव जी की प्रथम स्त्री से कोई सन्तान नहीं थी। दूसरी से भी कई वर्षों तक सन्तान नहीं हुई। अन्त में गुरु हरगोविन्द जी का जन्म हुआ।

सिक्खों के सुप्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ 'सूर्य प्रकाश' में लिखा है, कि एक बार हरगोविन्द जी को शितला देवी का प्रकोप हुआ और उनकी माता गंगादेवी जी ने अमृतसर में लोहगढ़ दरवाजे के बाहर थोड़ी दूर पर शीतला देवी की पूजा-अर्चना की।

गुरु अर्जुनदेव जी के बड़े भ्राता का नाम पृथ्वीचन्द्र था। वह अर्जुनदेव जी से सदैव ईर्ष्या रखता था और उनको हानि पहुंचाने की चेष्टा किया करता था।

गुरु अर्जुनदेव देव जी रामदास पुर से वड़ाली चले आये वहीं पर

हरगोविन्द का जन्म हुआ। दुष्ट पृथ्वीचन्द्रने बालक हरगोबिन्द के प्राण लेने के अनेक यत्न किये, परन्तु दैवयोग से सब विफल हुए। एक बार पृथ्वीचन्द ने रसोइये को फुसलाकर गुरु साहब के भोजन में विष मिला देने का भी षड्यन्त्र रचा था। उसके प्रकट हो जाने के कारण सिख समाज में पृथ्वीचन्द्र के विरुद्ध बडा क्षोभ फैला। अन्त में उसे वहाँ से अन्यत्र भाग जाना पड़ा।

अब गुरु साहब निश्चिन्त होकर नानक-धर्म के प्रचार-कार्य में पूर्ण शक्ति से लग गये। उन्होंने गुरु नानक देव से लेकर गुरु रामदास तक के गुरुओं की वाणी भाई मोहन जी से प्राप्त करके सुप्रसिद्ध 'आदि-ग्रन्थ' को संकलित किया। उन्होंने अपनी बनाई हुई रचना भी उसमें प्रविष्ट की। आदि-ग्रन्थ में गुरु वचनों के अतिरिक्त कबीर, नामदेव, धन्ना, पियाजी और रामानन्द आदि प्रख्यात भक्तों के भजनों का संग्रह भी है। गुरु साहब की आज्ञा थी कि इस ग्रन्थ को सब सिख पढ़ें तथा तदनुसार अपने आचरण बनावें। सिख सम्प्रदाय के गुरुओं की वाणी का कोई संग्रह-ग्रन्थ नहीं था। 'आदि ग्रन्थ' के निर्माण हो जाने से एक भारी अभाव की पूर्ति हो गयी।

गुरु साहब ने कई महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित किये। जिस अमृतसर नगर की स्थापना उनके पिता गुरु रामदास जी ने की थी, उसे खूब बढ़ाया तथा अमृतसरोवर के बीच में एक मन्दिर बनवाकर उस स्थान को एक परम सुन्दर तीर्थ के रूप में बदल दिया। अपना प्रधान निवास स्थान भी वहीं नियत किया। उन्होंने तरनतारन नाम के एक और नगर की स्थापना की। इसके बसाने का उद्देश्य यह था कि वह प्रदेश

बलवान और भावुक हिन्दुओं का वास-स्थान हो, जिससे कि उनका बल सिख-शक्ति को मिलता रहे।

तीसरा कार्य उन्होंने यह किया कि अब तक आय चन्दे के द्वारा हुआ करती थी। किन्तु उन्होंने प्रान्त के २२ हिस्से करके प्रत्येक हिस्से के लिये एक एक कर-अधिकारी नियुक्त कर दिया। वे अपने प्रान्तों की कर-निधि एकत्रित करके प्रति वर्ष वैसाख पर होने वाले विशाल दरबार में आकर गुरु साहब की भेंट करते थे।

इसके अतिरिक्त गुरु जी ने एक दो उल्लेखनीय कार्य और भी किये। एक बार शाहजादा खुसरो अपने पिता जहाँगीर से विद्रोह करके गुरु जी से सहायता की याचना करने आया। गुरु जी ने उसे धन से सहायता प्रदान की। दूसरा कार्य यह किया कि लाहौर के दीवान चन्दूलाल की कन्या का नाता यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि जिस पुरुष ने अपने सुख ऐश्वर्य को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया हुआ है और जिसमें न धार्मिकता है, न जातीयता उससे हमारा कैसा सम्बन्ध? चन्दूलाल इस बात से बहुत क्रुद्ध हुआ। वह अपनी कन्या का सम्बन्ध गुरु जी के पुत्र से करना चाहता था। अब उसने गुरु जी के विरुद्ध बादशाह के कान भरने आरम्भ किये।

बादशाह जहांगीर एक तो खुशरो को सहायता देने के कारण पहले से ही गुरु जी से अप्रसन्न था। उस पर चन्दू के बहकाने से तो वह और भड़क उठा और गुरु जी के नाश का उपाय सोचने लगा। वह यह भी जानता था कि इस समय गुरु जी की शक्ति प्रबल तथा उनका संगठन दृढ़ है तो भी उसने गुरु जी को बन्दी करने की आज्ञा दी।

गुरु अर्जुंनदेव जी बन्दी कर लिये गये। जब इस घटना का समाचार हिन्दू-समाज ने जाना तो सर्वत्र समाज में क्षोभ की लहर फैल गयी। दूर दूर से हिन्दू जनता लाहौर में एकत्रित होने लगी। गुरु साहब पर बादशाह ने दो लाख रुपया जुर्माना किया। गुरु साहब ने विनती भाव से कहा कि मैं निर्दोष हूँ और न मेरे पास धन है कि जुर्माना चुका सकूं। किन्तु आपकी कोई सुनवाई नहीं हुई और कोतवाल के सुपुर्द किये गये, जिसने आपको किले में बन्द कर दिया। निर्दय कोतवाल ने उनको अनेक यातनाएँ दीं। गुरु अर्जुन देव जी को उबलते हुए पानी में बैठाया। पश्चात् एक बड़े से चूल्हे पर एक बड़ी लोह रहकर उस पर गुरु जी को बैठा दिया। नीचे से अग्नि प्रज्वलित करके ऊपर से गर्म २ रेत फिकवाई। इतने पर भी गुरु जी विचलित नहीं हुए, तब उनके अचंभे का पारावार नहीं रहा। अन्त में उन्हें गाय की कच्ची खाल में मढ़ देने का उसने निश्चय किया।

गुरु अर्जुनदेव जी हिन्दू थे और गौ ब्राह्मण के लिये उनके हृदय में बड़ी श्रद्धा-भक्ति थी। वह भला कब गाय की कच्ची खाल में मढ़ा जाना स्वीकार कर सकते थे। अतः उन्होंने एक उपाय सोच निकाला। आपने कहा मुझे रावी में स्नान कर लेने दो, फिर चाहे जो करना। आपको नदी-स्नान की आज्ञा मिल गई। उन्होने नदी में प्रवेश किया और एक गोता लगाया, किन्तु तत्पश्चात् आप नदी में से लौट कर नहीं आये। नदी भी आपके पवित्र शरीर को अपनी गोद में लेकर कृतकृत्य हो गई और प्रेमवश हिलोर लेती हुई सी बहने लगी। गुरु अर्जुन देव के इस महान् बलिदान की गौरवगाथा रावी नदी की कल-कल ध्वनि में से अब भी निरन्तर सुनाई देती रहती है।

श्री गुरु अर्जुनदेव जी ४३ वर्ष की अवस्था में स्वर्ग सिधारे। नदी में खोज करने पर भी आपका मृत शरीर नहीं मिला। आपने गुरु गद्दी का अधिकार अपने सुपुत्र श्री गुरु हरगोविन्द जी को बन्दी होने से पहले ही दे दिया था।

श्री गुरु अर्जुनदेव जी न केवल जन्म के ही कवि और दार्शनिक थे किन्तु बड़े भारी राजनीतिज्ञ भी थे। आपके पास बड़े बड़े मुसलमान फकीर आते और वेदान्त की शिक्षा प्राप्त करते थे। आप स्वभाव के बड़े दयालु थे और अन्य गुरुओं की भांति गोब्राह्मण-प्रतिपालक और हिन्दुत्व से परिपूर्ण थे। सच तो यह है कि आप हिन्दुत्व के लिये जन्मे और हिन्दुत्व के लिये ही परलोक सिधारे।

षष्ठ गुरु

श्री गुरु हरगोविन्द जी

श्री गुरु हरगोविन्द जी का जन्म २१ आषाढ़ सं० १६५३ वि० में मण्डियाली में हुआ था। आपके पिता का नाम गुरु अर्जुनदेव जी और माता का नाम गंगादेवी जी था। आपके तीन विवाह हुए, प्रथम डल्ले गांव में नारायणदास खत्री की पुत्री दामोदरी जी से, द्वितीय अमृतसर में भाई हरिचन्द की सुपुत्री नानकी जी से तथा तृतीय मण्डियाली में ही भाई दयाराम मरवाहे खत्री की सुकन्या महादेवी जी के साथ हुआ।

प्रथम पत्नी ने बाबा गुरुदित्ता जी तथा बीबी वीरोजी, दूसरी पत्नी ने गुरु तेग बहादुर जी तथा तीसरी पत्नी ने सूरजमल, गुरु हरराय और बाबा अटल जी को जन्म दिया । इस प्रकार गुरु हरगोविन्द जी की तीन पत्नियों से एक कन्या और पांच पुत्र उत्पन्न हुए ।

इसके साथ ही गुरु जी के एक और विवाह का पता लगता है । एक बार एक सिख गुरु हरगोविन्द जी के लिये बड़े उत्तम तीन घोड़े ले आया । मार्ग में लाहौर के नाज़िम ने बादशाह के योग्य समझ कर तीनों घोड़े उनसे छीन लिये । बादशाह उन घोड़ों को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने एक घोड़ा अपने काजी को भेंट में दे दिया । पर गुरु साहब के अनुयायिओं ने वह घोड़ा काजी के पास न रहने दिया । येन-केन-प्रकारेण उससे छीन लिया । इसके साथ ही काजी की कन्या भी गुरु साहब के पास आ गई । गुरु साहब ने बड़ी प्रसन्नता से उसे स्वीकार कर लिया और उसका नाम कौल्लां रखा । कौल्लां बड़ी रूप-वती और बुद्धिमती थी । गुरु साहब उस पर बहुत अनुराग रखते थे । गुरु साहब ने उसके नाम पर अमृतसर के स्वर्ण-मन्दिर के पास एक सरोवर बनवा दिया और उसका नाम कौलसर रखा । आज भी कौलसर की मनोहरता में कोई अन्तर नहीं आया है ।

गुरु अर्जुनदेव के देहान्त होने के पश्चात केवल १५ वर्ष की अवस्था में आपको गुरु-गद्दी पर बैठा दिया गया । अवस्था कम होने पर भी तथा पिता की मृत्यु का शोक होते हुए भी, आपने कर्तव्य को जान लिया था । आपकी प्रखर बुद्धि, मन की दृढ़ता तथा ज्वलंत हिंदुत्व-

भावना से आपत्तियां और वाधायें नष्ट हो गयीं और आपका संगठन प्रबल बनता गया। आपने धर्म कर्म को जानने के अतिरिक्त समय की गति-विधि को पहचान लिया।

अतः आपने धर्मोपदेश के साथ साथ सिखों में युद्ध विद्या का भी प्रचार किया। कहा भी है, "धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्य मूलमुत्तमम्" बिना शारीरिक सामर्थ्य के आत्मिक शक्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी, यह उनका कहना था। आप स्वयं अखाड़े में मलयुद्ध किया करते थे। आप घोड़े की सवारी करने तथा शिकार खेलने में अति सिद्ध-हस्त थे।

शारीरिक उन्नति के अतिरिक्त आप धार्मिक गुरु का कर्तव्य भी पूर्ण रूपेण पालन करते थे। आप बहुत समय तक भजन पूजन किया करते थे। गुरु नानक की वाणी का पाठ करना आपका दैनिक नियम था। आपके दिव्य उपदेशों को सुनकर श्रोतागण स्वयमेव आपकी ओर आकर्षित हो जाते थे। आपका कहना था--बलवान् बनो जो बाहरी आपत्तियों को दूर नहीं कर सकता वह भीतरी शत्रुओं पर किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकता है। शक्तिशाली को कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं। यह संसार निर्बलों के रहने के लिए नहीं है। अतः आत्मिक-बल के साथ शारीरिक बल पर भी पूरा ध्यान रखो। आपकी इन शिक्षाओं से सिखों में एक नवीन शक्ति का संचार होने लगा।

शिष्य लोग भी गुरु के भावों को जानकर युद्ध-सामग्री ही एकत्र करते थे। धीरे-धीरे हरगोविन्द जी ने अपनी एक छोटी सी

सेना बना ली, जिसमें कितने ही पैदल और घुड़सवार थे तोपें और। युद्ध-सामग्री भी आपने प्रचुर मात्रा में एकत्र करली थी।

आरम्भ में तत्कालीन सम्राट् जहाँगीर के साथ हरगोविन्द जी की अच्छी मित्रता थी, पर बाद में इनके विरुद्ध लोगों ने बादशाह के कान भरे, कि ये राजकीय ठाट से रहते हैं, स्वयं मुकदमों का निर्णय देते हैं, सेना रखते हैं, सिखों को उपदेश देते है, कि हिन्दू धर्म के लिए शत्रुओं के रक्त की नदी बहा देश से विदेशी शासन उखाड़ फेंकों और हिन्दू राज्य स्थापित करो आदि। जहाँगीर ने सोचा कि कहीं हरगोविन्द अपने पिता के खून का बदला लेने की तैयारी में तो नहीं है। इसलिए वजीर खां नायब दीवान को दश हजार फौज देकर देखभाल करने तथा गुरु साहब को बादशाह के पास उपस्थित करने के लिये भेजा। वजीर खाँ योग्य पुरुष था उसने हरगोविन्द जी को बादशाह का सन्देश कह सुनाया। हरगोविन्द जी बादशाह से मिलना ही चाहते थे जिससे कि शत्रुओं से बदला लेने में सफल हों। भाई गुरुदास जी को कार्यभार सौंप कर सौ सवार और कुछ पैदल लेकर आप देहली पहुँचे। बादशाह इनके साथ वार्तालाप कर अति प्रसन्न हुआ। इनकी वीरता पर भी आसक्त हो गया। उसने इनके खर्च के लिए ५००) रुपये सरकारी कोष से नियत कर दिये। एक बार गुरु साहब बादशाह के साथ शिकार खेलने भी गये थे। वहां पर गुरु साहब ने एक क्रोधित शेर को अपनी तलवार से दो टुकड़े कर दिये थे। जिसे देखकर बादशाह दंग रह गया।

बादशाह गुरु साहब का प्रशंसक बन गया, चन्दूलाल यह देखकर जल उठा। इस नीच ने गुरु साहब को नीचा दिखाने की एक चाल

सोची। उसने बादशाह को गुरु अर्जुन देव पर किये गये दो लाख रुपये जुर्माने का स्मरण कराया जो अब तक प्राप्त नहीं हुआ था। बादशाह ने आज्ञा दी कि वह हरगोविन्द से वसूल कर किया जाय। गुरु साहब ने शान्ति से उतर दिया—"साधुओं के पास क्या धरा है जो दिया जावे।" कई शिष्यों ने जुर्माना देना चाहा किन्तु गुरू साहब ने अस्वीकार कर दिया। बादशाह ने चिढ़ कर गुरु साहब को बन्दी करके ग्वालियर के किले में भेज दिया।

लाहौर का मीयांमीर नामक फकीर गुरु साहब का भक्त था। वह जहांगीर के पास भी आता जाता था। एक दिन मीयांमीर ने बादशाह से कहा कि तुमने गुरु हरगोविन्द जैसे असाधारण पुरुष को वृथा बन्दी कर रखा है। गुरु अर्जुन भी तुम्हारी भूल से मारे गये। अब इनको शीघ्र मुक्त कर देने से ही तुम्हारा कल्याण हैं, नहीं तो राज्य में घोर परिवर्तन हो जायेगा।

मीर साहब का कथन सुनकर सचमुच ही बारशाह को डर हो गया। क्योंकि उसी समय आसफखां विद्रोही हो रहा था। कहीं सिख लोग भी उसके सहायक न हो जायें, इसलिये उसने गुरु साहब को तुरन्त मुक्त करने की आज्ञा दी। किन्तु गुरु साहब मुक्त होकर तब तक बाहर नहीं आये, जब तक ग्वालियर के किले के समस्त बन्दियों को मुक्त न करा लिया। इस मुक्ति को 'बन्दी छोर' कहते हैं। ये मुक्त लोग गुरु साहब के शिष्य हो गये।

बादशाह ने गुरु साहब की बड़ी प्रशंसा की। उन्हें अपने

साथ एक हजार सिपाह, पांच सो सवार तथा ६४ तोपखाने रखने की स्वीकृति देकर आदर के साथ विदा किया। पंजाब में लौटने पर सर्व प्रथम गुरु साहब ने चन्दूलाल को उसके दुष्कर्मों का का दण्ड दिया। तिलण्डी में आकर सिक्खों का एक वार्षिक सम्मेलन बुलाया जिस से कि प्रति वर्ष सिख लोग एकत्र होकर दर्श स्पर्श कर सकें।

सम्वत् १६-४ वि० में जहांगीर की मृत्यु हो जाने पर शाहजहां बादशाह हुए। पंजाब के सूबेदार से गुरु साहब की अनबन चल रही थी। गुरु साहब की सिख सेना का नाश करने की तैयारी कर रहा था। प्रथम बार मुस्लिम सेनापति ने ७००० मुसलमान सिपाहियों को लेकर आक्रमण कर दिया, किन्तु अमृतसर के निकट ५००० सिख सेना ने उन पर एसी मार लगाई, कि मुसलमान भागते ही बने।

दूसरी लड़ाई गुरु साहब को एक डाकू द्वारा बादशाह के घोड़े चुरा लेने पर लड़नी पड़ी थी जिसमें जीत सिखों की ही हुई। इस के पश्चात् उन्होंने शतद्रु नामक नदी के वन प्रदेश में कुछ दिन एकान्तवास किया। किन्तु तीसरी लड़ाई लड़ने के लिये उन्हें फिर युद्ध-भूमि में आना पड़ा। पायेन्दा खां नामक पठान गुरु हरगोविन्द की मजदूरनी का लड़का था। उस दासी पुत्र पर गुरु साहब बड़ी दया करते थे। एक बार गुरु-पुत्र का एक बाज पक्षी उड़कर पायेन्दा खां के घर चला गया जिसे पायेन्दा खां ने स्वयं रखने के लिये पिंजरे में बन्द कर दिया। उस पक्षी को लौटा देने के लिये बहुत कहा सुनी की गई। तब वह बादशाह से जा मिला और एक फौज लेकर गुरु से लड़ने सन्मुख आ डटा। भयंकर मारकाट मची। हजारों सैनिक मारे गये। अन्त में

विजय गुरु जी की हुई। इसी युद्ध में एक सैनिक ने उन्मत्त होकर गुरु पर आक्रमण किया। गुरु ने बड़ी चतुराई से वार बचा कर उसे तलवार मारकर पैरो तले गिरा दिया और साथ ही कहा—'तुमने जिस प्रकार आक्रमण किया, तलवार उस प्रकार नहीं चलाई जाती। मैने जिस प्रकार तलवर चलाकर तुम्हें गिराया, शत्रु नाश के लिये तलवार का प्रयोग उस प्रकार होता है" वास्तव में गुरु युद्ध में क्रोधवश हो किसी पर शस्त्राघात नहीं करते थे।

इस युद्ध के पश्चात् गुरु जी ने शांति-पूर्ण जीवन बिताना ठीक समझा। अतः आप पहाड़ियों पर कीर्तिपुर नामक स्थान में जाकर निवास करने लगे और अन्त समय तक वहीं रहे। सन् १७०१ वि० में ४८ वर्ष की अवस्था में शांतिपूर्वक आपने इहलीला संवरन की। गुरु साहब पर लोगों की इतनी अगाध भक्ति व प्रेम था कि कई शिष्यों ने गुरु के बिना संसार में जीना वृथा है, यह यह कहते हुए उनकी जलती हुई चिता में कूदने की चेष्टा की थी। इनकी समाधि कीर्तिपुर में पाताल पुरी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

गुरु हरगोविन्द जी के पांच पुत्र थे—गुरुदत्त, तेगबहादुर, सूरतसिंह, अनीतर, और अतुलराव। गुरुदत्तजी अपने पिता हरगोविन्द जी के सामने ही मर गये थे, उन के लड़के हररायजी से गुरु अधिक प्रेम रखते थे। अतः गुरुजी ने उन्हीं को गुरु-पद पर प्रतिष्ठित किया।

सप्तम गुरु

श्री गुरु हरराय जी

आपका जन्म कर्तारपुर में सं० १६८६ वि० में भाई गुरुदत्त जी के यहाँ माता निहालकौर जी के उदर से हुआ था। आपका विवाह सं० १७०४ वि० में दयाराम की पुत्री से हुआ। सं० १७०४ में जब गुरु हरगोविन्द जी का स्वर्गपास हुआ तब आप सिखों के गुरु पद पर प्रतिष्ठित हुए। उस समय आपकी आयु १५ वर्ष की थी।

आप बाल्यकाल से ही शान्तिप्रिय और मितभाषी थे। इन्द्रिय-विषयों से आप नितान्त उदासीन थे। आपका हृदय बड़ा ही कोमल और दयावान था। आपको लड़ाई झगड़े, शिकार आदि की अपेक्षा एकान्त सेवन अधिक प्रिय था। किन्तु समय आने पर शस्त्रादि का उपयोग करने से भी नहीं चूकते थे।

आप अपना अधिक समय ईश्वर भजन और उपदेश में ही व्यतीत करते थे। गुरु नानक-प्रचारित वाणी कहते हुए आप की आंखों में अनेक बार प्रेमाश्रु छलकने लगते थे तथा श्रोतागण भी प्रेमसागर में डूब जाते थे। आपके लिए धनी और निर्धन सब समान थे।

आपका एक शिष्य चमार था। उसको गौरा नामी एक अन्य शिष्य गाली दिया करता था। यह बात गुरु जी को अवगत हुई। वे बहुत अप्रसन्न हुए। उन्होंने गोरा को दरबार से निकाल दिया। किन्तु गोरा भी पक्का गुरु-निष्ठ शिष्य था। वह निरन्तर गुरु के पीछे चला करता था। एक बार हरराय जी कर्तारपुर को जा रहे थे। रास्ते में मुहम्मद यारबेग ने इन पर आक्रमण किया। गोरा ने उस म्लेच्छ के उद्देश्य को पहले ही भांप लिया था। वह दौड़ कर गुरु के शिष्यों को बुला लाया। उन्होंने आकर बादशाही लुटेरों के छक्के छुड़ा दिये और वे भाग निकले। गुरुजी ने जब

गोरा के साहस की वार्ता सुनी तो वे अति प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे क्षमा कर दिया।

औरंगजेब का भाई दाराशिकोह गुरु हरराय जी का बड़ा भक्त था। सन् १६८५ में गुरु जी ने उसे एक औषधि भेजी थी जिससे उसका जीवन बच गया था। तभी से वह गुरु जी का विशेष अनुरागी बन गया था। सन् १६८५ ई० में जब औरंगजेब की सेना बड़ी तेजी से दारा का पीछा कर रही थी, उस समय दारा ने गुरुजी से सहायता की याचना की जिसके कारण दारा सुरक्षित रूप से अफगानिस्तान की ओर जा सका। व्यास नदी पर तब तक गुरु जी की सेना ने औरंगजेब की सेना को रोके रखा।

उपर्युक्त घटना के पश्चात् फिर गुरु जी को कभी शस्त्र उठाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। तत्पश्चात् आप सिक्खों के संगठन में ही लगे रहे, किन्तु इस बीच में एक उल्लेखनीय घटना और हो गई जिसका सारांश नीचे लिखा जाता है।

गुरु हरराय जी ने जिस दिन दारा की सहायता की, उसी दिन से औरंगजेब गुरु जी का शत्रु हो गया। औरंगजेब ने बादशाह होते ही हिन्दुओं पर भीषण अत्याचार करने आरम्भ कर दिये। ग्राम के ग्राम मुसलमान बनाये जाने लगे। जो नहीं बनता था उसकी गर्दन काटी जाती थी। अब उसने गुरु साहब को भी कहला भेजा, क्योंकि आपने दारा शिकोह की सहायता की है अतः आप बादशाह के अपराधी हैं, आप शीघ्र दरबार में उपस्थित होवें। गुरु साहब ने समय की गति को देखा और सोच विचार कर अपने बड़े पुत्र रामराय को समझा बुझा कर दरबार में भेज दिया।

गुरु हरराय जी के दो पुत्र थे—एक रामराय दूसरे हरकिशन। जब आपने अन्त समय निकट देखा तो गुरु गद्दी पर अपने छोटे पुत्र हरकिशन जी को अभिषिक्त किया। इस समय हरकिशन जी

की अवस्था ५ वर्ष की थी ।

कीर्तीपुर में सं० १७१६ वि० में ३१ वर्ष की अवस्था में गुरु हरराय जी सुरपुर सिधार गये। कीर्तिपुर में उनकी समाधि अभी तक विद्यमान है ।

गुरु हरराय जी बड़े ही सच्चरित्र, धर्म-रक्षक, और ईश्वर के सच्चे भक्त थे। कहते हैं एक बार टर्की का बादशाह भी गुरु जी के दर्शनार्थ आया था। उसने गुरु जी से प्रश्न किया कि—महाराज, मुहम्मद, ईसा मसीह और मूसा आदि जो पैगम्बर हुए हैं, उन में से किसके सिद्धान्तों का अनुसरण करने से मुक्ति प्राप्त हो सकती है ? गुरु जी ने उत्तर दिया, "बादशाह, ईश्वर तो सर्वव्यापक है, निराकार है, निरिन्द्रय है और सर्व भूतों का अन्तरात्मा है । उसके पास पहुंचने के लिये किसी भी सहायता की आवश्यकता नहीं है । मनुष्य कर्मों में बद्ध है, जैसा करेगा वैसा भोगेगा । उस अच्छे कर्मों का उत्तम एवं बुरे कर्मों का बुरा फल प्राप्त होगा । ईश्वर किसी सांसारिक राजा के समान नहीं जिसको किसी की सिफारिश की आवश्यकता हो । वह दूर से भी दूर और निकट से भी निकट है और देखने वालों के लिए उसके हृदय में भी प्रतिष्ठित है । वह सब को एक दृष्टि से देखता है ।" बादशाह यह उत्तर सुन कर अति प्रसन्न हुआ ।

अष्टम गुरु

श्री गुरु हरिकिशन जो

आपका जन्म ६ श्रावण संवत् १७१३ में कर्तारपुर (जिला जालन्धर) में गुरु हरराय जी के घर में माता कृष्णा कौर जी के उदर से हुआ था । चूंकि आप बहुत छोटी अवस्था में ही संसार छोड़ गये, इस लिए आप का कोई विवाह नहीं हुआ ।

१७१६ संवत् वि० में गुरु हरराय जी सुरपुर सिघारे थे उस समय आप केवल पांच ही वर्ष के थे। इस पाँच वर्ष की छोटी सी अवस्था में ही आप को गुरूगद्दी मिल गयी और आप गुरू-पदवी से विभूषित किये गये। जब रामराय जी को इसका पता लगा तो उन्होंने इनके विरूद्ध आवाज उठाई और बादशाह औरंगजेब से भी इसकी शिकायत की। लेकिन बन कुछ न सका। यद्यपि औरंगजेब ने गुरु हरकिशन जी को अपने यहाँ बुलाया और चाहा भी कि रामराय की इच्छा पूरी की जाय अर्थात् गुरु गद्दी हरिकिशन जी के बजाय रामराय जी के अधिकार में हो जाय, परन्तु हुआ कुछ नहीं।

गुरु हरिकिशन जी बड़े होनहार नर-रत्न थे किन्तु जब कि उन की उम्र अभी केवल आठ ही वर्ष की थी शीतला निकल आने के कारण सुरपुर सिघार गये। जाने के पहले उन्होंने अपने दादा के छोटे भाई गुरु तेग बहादुर जी को अपना उत्तराधिकारी नियत करके गुरुत्व के पूर्ण चिन्ह उनके पास भेज दिये। गुरु तेगबहादुर जी उन दिनों में वकाला नामक स्थान में रहते हैं।

नवम गुरु

श्री गुरु तेग बहादुर जी

श्री गुरु तेग बहादुर जी का जन्म सं० १६७८ वि० में माता नानकी जी के उदर से अमृतसर में हुआ था। आप गुरु हरगोविन्द जी के सब से छोटे पुत्र थे। आपका विवाह कर्तारपुर में लालचन्द खत्री की सुकन्या श्रीमती माता गुजरी से सं १६८६ वि० में हुआ था। इसी वीर प्रसविनी माता गुजरी के पवित्र उदर से श्री गुरु गोविन्दसिंह ने सं० १७२३ वि० में जन्म लिया था।

वहुतरे सिक्खों और अन्त में अपनी माता के कहने से उन्होंने गुरु-पद ग्रहण करना स्वीकार किया । उधर गुरु हरराय के बड़े भाई धीरमल जो पहले से ही गुरु गद्दी पाने के लिए लालायित थे और इसके लिए अनेक कुचक्र रच रहे थे, बाबा तेग बहादुर के गुरु होने से और भी कुपित हो गये । वे गुरु के विरुद्ध भयंकर षड्यन्त्र रचने लगे ।

धीरमल के उत्पातों से दूर रहने के लिए गुरु तेग बहादुर एक पहाड़ी स्थान में जाकर रहने लगे और वहीं पर आनन्दपुर नाम से एक नगर बसा लिया । पर वहाँ भी गुरु-द्रोहियों ने उन्हें चैन नहीं लेने दिया । उन्होंने बादशाह को गुरु के विरुद्ध भड़काया । गुरु साहब ने परिस्थिति को देख कर देशाटन करने का निश्चय किया । वे राजा जयसिंह के पास जयपुर चले आये । वहां से राजस्थान, मालवा, बागड़ आदि स्थानों में सिख धर्म का प्रचार करते हुए विन्ध्याचल की ओर गये । तत्चात् प्रयाग, काशी, गया होते हुए पटना पहुँचे । पटना से राजा जयसिंह के साथ आप आसाम की चढ़ाई में सम्मिलित हुए । कहते हैं कि गुरु ने मध्यस्थ बन कर युद्ध का वह महा-रक्तपात नहीं होने दिया । उनके सदुपदेशों का दोनों पक्षों पर इतना प्रभाव पड़ा कि समस्त सेना ने अपयी ढालें एक स्थान पर एकत्रित कर दीं । उनके ऊपर मिट्टी डाल कर एक टीला बनाया गया । इस टीले पर शान्ति-स्थापक गुरु नानक के नाम से एक मठ की स्थापना की गयी ।

इन्हीं दिनों गुरु तेगबहादुर को सूचना मिली कि पटने में उनकी स्त्री के पुत्र उत्पन्न हुआ है । यह समाचार पाकर वे पटने लौटे और पुत्र को देखकर उसका नाम गोविन्द रखा । पटना में कुछ दिन रहने के पश्चात् आप पंजाब चले आये ।

पंजाब में इस समय औरंगजेब के अत्याचारी शासन-कर्ताओं के

मारे सारी प्रजा त्राहि त्राहि कर रही थी। हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाता था। जो मुसलमान बनना अस्वीकार करता था, वह निर्दयतापूर्वक मार दिया जाता था। हिन्दुओं का जीवन अपमानित तथा महान कष्टमय था।

इसी समय सैकड़ों ब्राह्मण और पण्डित काश्मीर से भागे हुए गुरु जी के पास शतद्रु नदी के किनारे आये। ये लोग औरंगजेब के अत्याचार और पाशविक दमन से संत्रस्त हो कर वहाँ से भाग आये थे। इन्होंने अतिकारुणिक शब्दों में हिन्दूओं और विशेषत: गौ-ब्राह्मणों पर होने वाले अत्याचारों की का कहानी गुरु तेग बहादुर जी को सुनाई। कोई कहता था 'महाराज' मेरे लड़के को मुसलमान बना लिया गया, मैं अवसर पाकर भाग आया हूँ।" दूसरा कहता था, "मेरे पर विधर्मियों ने गौ-माँस फेंका हैं। मैं अपने प्राण बचाकर भाग आया हूँ। हम तो आपकी ही शरण हैं, आपके अतिरिक्त कौन रक्षा करेगा? त्राहि माम्, त्राहि माम्, त्राहि माम्।" गुरु साहब ने कहा, "प्रियवर! भय दूर करो। वह अशरण-शरण परमात्मा ही सबका रक्षक है। उसी की प्रेरणा से ही सब कुछ होता है, तथापि मैं आपके किसी भी काम आ सका तो अपने को धन्य समझूंगा।

गुरु ने विचार किया कि धर्म-बलिदान का समय आ गया। जब तक किसी महात्मा का बलिदान नहीं होगा तब तक इस अत्याचारी शासन को उखाड़ फेंकने की शक्ति हिन्दू समाज में प्रकट नहीं होगी। गुरु ने कहा—'किसी प्रिय वस्तु का बलिदान चाहिये। उस प्रकट हुई शक्ति से ही अत्यांचार नष्ट होंगे।

ब्राह्मण इस कथन को सुनकर चुप हो गये। गुरु गोविन्द सिंह इस समय ९-१० वर्ष के बालक ही थे। वे भी वार्तालाप सुन रहे थे, वे उठकर हाथ जोड़े हुए पिता से निवेदन करने

लगे, 'पिता जी ! आप से बढ़कर ऐसा महात्मा कौन हो सकता है, जो धर्म की रक्षा में बलि दे सके।"

गुरु गोविन्दसिंह के यह कथन सुनकर सब लोग दंग रह गये। गुरु साहब ने भी चकित होकर उस बालक की ओर एक क्षण देखा पश्चात् धीर गम्भीर वाणी में कहने लगे "हाँ ठीक तो है, हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए बलिदान करने को इससे उत्तम कौन अवसर प्राप्त होगा। विप्रवरों ! आप दिल्ली जाकर बादशाह से कहो, कि हम पर क्यों अत्याचार किया जाता है ? धर्म की गद्दी पर गुरु तेगबहादुर विराजमान हैं; प्रथम इनको मुसलमान बनाया जावे तत्पश्चात् उधर के सभी हिन्दू मुसलमान बन जायेंगे।"

गुरु साहब ने आत्म-बलिदान देने का निश्चय कर लिया था। उन्होंने समय की आवश्यकता को पहचान कर धर्म के लिए स्वेच्छा से मृत्यु का आह्वान किया। धन्य हैं ऐसे लोकोपकारी महात्मा, जिनके चरित्रों के कारण हिन्दू जाति का इतिहास गौरवान्वित है।

ब्राह्मणों ने देहली जाकर औरंगजेब से वही निवेदन किया। औरंगजेब ने तत्काल गुरु साहब को बुलाने का प्रबन्ध किया। गुरु साहब को जब यह ज्ञात हुआ, कि बादशाह उन्हें देहली बुलवाना चाहते है तो वे तत्काल ही बिना विरोध के दिल्ली जाने को तत्पर हो गये। गोविन्दसिंह जी को बुलाकर गुरु हर-गोविन्द जी की दी हुई तलवार गुरू जी ने दी और उन्हें सिक्खों के गुरु-पद पर अभिषिक्त कर दिया। उन्होंने कहा—'पुत्र ! शत्रुओं की इच्छा देखते हुए शुभ लक्षण प्रतीत नहीं होते। यदि शत्रु हमें वध कर दें तो हमारी मृत देह उनके द्वारा अपमानित नहीं होने पावे।" उन्होंने फिर कहा—बदला और प्रतिहिंसा ही पुत्र का एकमात्र कर्त्तव्य है।"

बहुत से सिख उनके साथ जाने को तत्पर हुए, किन्तु उन्होंने

उत्साह पूर्वक सबको मार्ग से ही पीछे लौटा दिया। केवल पांच शिष्य साथ ले लिये। दिल्ली पहुंचने पर आपको बन्दी-गृह में रखा गया।

बन्दी-गृह में उनको अनेक तरह की यन्त्रनायें दी गयीं। गुरु के शिष्यों में मतिदास भी थे। काजियों ने इन्हें कहा - मिथ्या धर्म छोड़ कर इस्लाम को ग्रहण करो।" इस पर क्रोधित होकर भाई मतिदास जी ने कहा—"इस्लाम धर्म मिथ्या है हिन्दू धर्म मिथ्या नहीं।"

तब बादशाह ने आग बबूला होकर आज्ञा दी कि इसको आरे से चीर कर दो टुकड़े कर दिये जांय। आज्ञा का पालन हुआ। भाई मतिराम पर आरा चलाया जाने लगा। जब तक उनको चेतना रही वे ईश्वर के नाम का जप करते रहे। शरीर के दो भाग होने पर पृथ्वी पर गिर पड़े।

इस पर भाई दयालदास बड़े उत्तेजित होकर औरंगजेब से बोले "रे दुष्ट, तेरे वंश और साम्राज्य का नाश होगा।" बादशाह क्रुद्ध होकर उन्हे खौलते हुए एक तेल की कढ़ाई में छुड़वा दिया। इस प्रकार हिन्दू धर्म पर महान बलिदान देने वालों की माला में ये जाज्वल्यमान् मुक्ता पिरोये गये।

दूसरे दिन गुरु तेग बहादुर को दरबार में लाया गया। बादशाह ने आप से इस्लाम स्वीकार करने के लिये कहा। गुरु जी ने बड़ी निर्भीकता से उत्तर दिया—"ईश्वर किसी जाति या धर्म विशेष का पक्षपात नहीं करता वह तो प्राणी-मात्र के लिये समान ही है। धर्म-भावना मनुष्य के हृदय और उसके व्यवहार में होती है। ऊपर से नाम के लिये धर्म को मानने में नहीं।"

दिल्ली के दरबार में औरंगजेब और गुरु तेग बहादुर के रूप में पशु बल और आत्मबल, सत्य और असत्य, न्याय और अन्याय तथा पाप और पुण्य का यह द्वन्द्व युद्ध दर्शनीय था। बादशाह ने धन, स्त्री, राज्य, ऐश्वर्य आदि हर तरह का लोभ

गुरु जी को दिया तथा अनेक तरह की भीषण यातनायें दीं परन्तु वह महान् हिन्दू धर्म में गहरे रंगे हुए गुरु तेग बहादुर पर इस्लाम धर्म का रंग चढ़ाने में समर्थ नहीं हो सका। कारण यह था कि गुरु जी तो धर्म के उस वास्तविक मर्म तक पहुँच चुके थे जिससे नर से नारायण बन जाता है। वह भला इस्लाम धर्म की शरण में क्यों जाते? आपने बादशाह से फिर कहा—बादशाह, आप मुझे मृत्यु का भय दिखाते हैं? मुझे तो गुरुओं ने उस धर्म की शिक्षा दी है जिसके सिद्धान्तों के अनुसार प्राणी कभी मरता नहीं। केवल शरीर जीर्ण होने पर बदल जाता है, जिसको संसारी लोग मृत्यु के नाम से पुकारते हैं। जिसने स्थूल शरीर पाकर जन्म लिया है, उसको मृत्यु से कोई नहीं बचा सकता। आज नहीं तो कल मरेगा अवश्य। तो फिर किसी (सांसारिक नश्वर) पदार्थ के लिए ईश्वरीय नियम (सत्य धर्म) को बेचना पापियों का काम है।

बादशाह भी इनके अतुल साहस और असीम दृढ़ता को परख चकित हो गया। उसने अपने मत्रियों तथा काजियों को बुला कर उन की सम्मति ली। उन्होंने गुरु बध की सम्मति दी।

सम्वत् १७३२ वि० की मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी का दिन था। औरंगजेब ने चाँदनी चौक में गुरु तेगबहादुर को खड़ा करके उनका सर कटवा दिया। सिर धड़ से कट कर कुछ दूरी पर जा गिरा। तुरन्त ही उसे साहसी वीर भाई जेठा ने उठा कर आनन्दपुर भेज दिया। वहां गुरुजी के सिर की दाह-क्रिया की गई।

सिखों ने गुरु साहब की शेष लाश को भी बादशाह से मांगा किन्तु उसने कहा हिन्दू मुर्दे को जलाते है और मुसलमान गाड़ते है। परन्तु ऐसे आदमी की लाश को जो खुदा और बादशाद दोनों से बागी था, न जलाना चाहिये और न गाड़ना चाहिय, बल्कि ऐसे ही पड़ी हुई सड़ने देना चाहिए।

गुरु तेगबहार का महान् बलिदान हो गया । उनके पंचभौतिक शरीर का नाश हो गया, किन्तु उनकी अमर आत्मा ने पंजाब के कण २ में व्याप्त होकर एक भीषण दावानल का रूप धारण किया, जिसने कि कुछ वर्षों में ही मुगल साम्राज्य को जला कर भस्म कर दिया । बलिदान के इतिहास का एक पृष्ठ और स्वर्णाक्षरों में लिखा गया । दिल्ली के चांदनी चौक के इतिहास के साथ गुरु तेगबहादुर के बलिदान-स्थान पर बना हुआ विशाल गुरुद्वारा 'शीशगंज' आज भी उस इतिहास-प्रसिद्ध अमर घटना का स्मरण दिला रहा है ।

गुरु तेगबहादुर के बलिदान के साथ ही एक वृद्ध सिख के आत्म-बलिदान की गाथा लिख कर हम इस महान् चरित्र को समाप्त करेंगे ।

गुरु गोविन्द सिंह गुरु-पद पर आरूढ़ हो चुके थे। जब आपने यह सुना कि बादशाह गुरु की लाश को अपमानित कर रहा है तब आपने बड़े दरबार में यह प्रश्न उठाया कि गुरु का मृतदेह किसी प्रकार भी प्राप्त करना चाहिये । सब शिष्य चिन्तित थे । वे मरने से नहीं डरते थे किन्तु चिन्ता यह थी कि सफलता-पूर्वक लाश को यहां तक किस प्रकार लाया जाय ।

दरबार में जब कोई नहीं बोला तब एक वृद्ध सिख तथा उसका युवक पुत्र उठे और कहने लगे, "सच्चे गुरु ! इस कार्य का भार हम लेना चाहते हैं । हम जाति से बड़े नीचे हैं, परन्तु गुरु साहब ने हमको सिख बना कर हमारा बड़ा उपकार किया है, हम यदि सेवा कर सकें तो अपने को धन्य मानेंगे ।

गुरु गोविन्द सिंह जी ने इन्हें नीचे से ऊपर तक देखा और कहा,

"जाओ कर्तार तुम्हारी सहायता करेगा।" इन दोनों ने मस्तक नवा कर गुरु को प्रणाम किया और दिल्ली की ओर चल दिये।

अभी यह कुछ ही दूर गये थे कि इनको एक रथ वाला मिल गया। दैवात् रथ वाला गुरु का एक सेवक ही था। पिता पुत्र ने उसे अपना परिचय भी दिया तथा जिस महान कार्य को सम्पादन करना था वह भी बताया। रथवान् भी इस कार्य में सहायता करने को उद्यत हो गया। उसने कहा, "मैं दिल्ली के सब रास्तों तथा सब जगह से भी जहां कुछ मुगल सिपाहियों के पहरे में गुरु जी की लाश रखी हुई है, जानकार हूँ।" पिता-पुत्र अति प्रसन्न हुए। तीनों में यह निश्चित हुआ कि रथवान् तो रथ को लेकर कहीं खड़ा रहे और ये दोनों लाश को निकाल लावें। फिर लाश को रथ में रखकर अंधेरे मे ही दिल्ली से दूर निकल जावें।

शाम होते ही ये लोग दिल्ली पहुंच गए। अर्धरात्रि होने पर दिल्ली की निर्जन गलियों में से होते हुए रथवान् पिता पुत्र को उस स्थान पर ले गया जहाँ गुरु की लाश रखी हुई थी। उस समय शव के समीप कोई रक्षक नहीं था यह देखकर उन्हें अति आश्चर्य तथा सन्तोष हुआ। कदाचित् रक्षकों ने यह समझा हो कि शव को पड़े हुए इतने दिन हो गये अभी तक इसे ले जाने की किसी ने चेष्टा नही की तो फिर कौन आवेगा। वे पास ही कहीं विश्राम करने को चले गये होंगे।

पिता पुत्र दबे पांव शव के समीप आये। शव को देख कर पिता-पुत्र की गुरु-भक्ति उमड़ आई। श्रद्धापूर्वक गुरु की लाश को प्रणाम किया। वृद्ध की आखों से अश्रु बहने लगे। पुत्र ने कहा यह "यह आंसु बहाने का समय नहीं। शीघ्रता करनी चाहिये नहीं तो सब किया कराया

मिट्टी हो जायेगा।" बड़ी सावधानी से पिता पुत्र ने गुरु के शव को उठा कर रथ में रख और उसे अच्छी तरह अपने कोटों से ढक दिया। तब एक ही विचार दोनों के मस्तिष्क में दौड़ा और वे निस्तब्ध हो एक दूसरे की ओर देखने लगे।

शव के स्थान पर उन में से किसी को लेटना चाहिए, गहीं तो रक्षकों के आते ही शव न मिलने पर ढिंढोंरा पिट जाएगा और दिल्ली की समस्त सड़कें छान डाली जावेंगी। एक क्षण को पिता-पुत्र चुप रहे। पश्चात् पुत्र ने निर्भयता पूर्वक कहा, 'पिता जी, गुरु की जगह मैं लेटूंगा।"

'नहीं पुत्र" वृद्ध ने कहा, 'तुम अभी युवक हो। अभी तुम्हें जीवन में बहुत कुछ करना है। यह ठीक है तुम गुरु के लिए अपना प्राणों की बाजी लगाने को समुद्यत हो। किन्तु यह देखो. मेरा शरीर अब थक गया, आंखों की ज्योति मन्द पड़ गयी, भुजाएँ अशक्त हो गयीं, किन्तु तो भी में अपनी जाति के गौरवानुकूल मृत्यु का आलिंगन करना चाहता हूँ।" पुत्र ने फिर कहा, पिताजी मैं आपके तीन पुत्रों में से एक हूँ। यदि मैं मर भी जाता हूं तो फिर भी दो तो लड़ने को और रह जाते हैं, किन्तु आपका स्थान कौन पूरा करेगा। आप तो परिवार के स्वामी हो, हम हर बात के लिये आप ही पर अवलम्बित है।"

"परे हट जाओ" वृद्ध ने आज्ञासूचक स्वर में कहा—'देखो सबेरा होने वाला है और प्रतिक्षण रक्षकों के आने का डर है। शव को चुपचुप अमृतसर ले जाकर प्रतिष्ठापूर्वक अन्तिम संस्कार कराओ।" पुत्र ने फिर भी चेष्टा की कि धर्म के लिये यह गौरवास्पद बलिदान उसी के प्राणों का हो, किन्तु तब तक वृद्ध ने अपनी कमर से कृपाण निकाल

कर धीमे किन्तु विजय सूचक स्वर में 'गुरु जी की फतेह कहते हुए अपने हृदय में घुसेड़ ली । गुरु के शव के स्थान पर ही वृद्ध का मृतक शरीर लुढ़क पड़ा । उसके मुख पर सन्तोष और शान्ति झलक रही थी । जैसे कि इस वलिदान से वह मुक्ति को प्राप्त हो गया हो ।

हृदय में दुःख का बोझ लिये हुये पुत्र ने पिता के शव को गुरु के कपड़े पहनाये और पश्चात् रथवान् के साथ शीघ्रता से अमृतसर की राह ली ।

धन्य है ऐसे वीर पिता को जिन्होंने धर्म के लिए इस अपूर्व बलिदान का आदर्श उपस्थित किया, जिस से कि आगे आने वाली सन्तान सदा ही नवस्फूर्ति लेती रहेगी ।

गुरु की लाश के आनन्दपुर पहुँचने पर गुरु गोबिन्द सिंह जी ने बड़े आदर और सम्मानपूर्वक गुरु का अन्तिम संस्कार किया ।

दशम गुरु

श्री गुरु गोविन्द सिंह जी

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी का जन्म सं० १७२३ वि० पौष कृष्ण त्रयोदशी को पटने में हुआ था । आपके जन्मोत्सव पर सिखों में सर्वत्र आनन्दोत्सव मनाये गये । अनेक सिख बहुमूल्य भेंट लेकर पटना पहुंचे । चारो ओर आनन्द छा गया । बिहार में सिख गुरुओं का कोई शत्रु नहीं था । जनता में सभी जगह उनका मान था, इसका मुख्य कारण यही था, कि हिन्दू-जाति की रक्षा के लिए गुरु तेगबहादुर अपना सर्व बलिदान करने को तत्पर थे ।

गुरु गोविन्द सिंह जी का लालन-पालन पटना में ही हुआ । बालक गोविन्द खेल खूद में बड़ा मन लगाते थे । बचपन में ही आपकी योद्धा तथा निर्भयवृत्ति का परिचय मिल चुका था । बालकों को एकत्रित कर

उनके सरदार बनना तीर कमान चलाना, बनावटी लड़ाईयाँ लड़ना तथा दुर्ग जीतना आदि आपके दैनिक खेल थे । आपका शारीरिक गठन भी अतुलनीय था ।

गुरु तेगबहादुर ने ७ वर्ष की अवस्था में अपने पुत्र गोविन्द सिंह को साहबचन्द ग्रंथी के पास पढ़ने को भेजा । थोड़े ही समय में आपने आदि ग्रंथ पढ़ डाला । इसके पश्चात् आपने संस्कृत तथा फारसी की शिक्षा पाई । युद्ध-विद्या सीखने के लिये एक चतुर रण-कला विशारद राजपूत नियुक्त लिया गया । रण-कला तो मानों आपने मां के दूध के साथ घोल कर पी ली थी । इसे तो आपने अल्पकाल में ही सीख ली । आपको रामायण और महाभारत के अध्ययन का बड़ा चाव था । सिक्खों का उत्थान तथा मुगल साम्राज्य का पतन इसी अध्ययन तथा शिक्षा का ही परिणाम है ।

जिस समय गुरु तेगबहादुर जी तथा उनके दो वीर शिष्य मतिदास तथा दयालदास के बलिदान का समाचार आनन्दपुर पहुंचा तो गुरु तेगबहातुर की माता नानकी देवी बहुत व्याकुल हुई । उस समय गुरु गोविन्द सिंह ने उन्हें समझाकर धैर्य दिलाया और कहा कि आपको हर्ष होना चाहिये कि आपका पुत्र परमोच्च गति को प्राप्त होकर अमर हो गया है । धर्म रक्षा के हेतु जीवन दान देने से बढ़ कर कृत्य संसार में और क्या होगा ।

पिता के बलिदान ने आपकी आँखें खोल दी । आप आततायियों से पिता का प्रतिशोध लेने के लिये उतावले हो उठे । आपने प्रतिज्ञा की, "यदि मैं गुरु तेगबहादुर का पुत्र हूँ तो औरंगजेब से इस घोर अत्याचार का अवश्य ही बदला लूंगा ।" उसके अन्यायी शासन को छिन्न-भिन्न करके ही दम लूंगा ।" यह वे जानते थे कि मुसलमान धर्म के नाम पर संगठित थे और हिन्दुओं में फूट थी । हिन्दूओं को अपने अपने स्वार्थ की ही पड़ी हुई थी । दूसरे हिन्दू पर संकट आया देखकर वे खड़े खड़े देखा करते थे । किन्तु उन

को संगठित सहायता करना उनको अभीष्ट नहीं था । संकट सब पर आता था, सभी दुखी थे किन्तु संगठित हो जाने की भावना निकल जाने के कारण अत्याचार से बराबर पिसते ही रहे और औरंगजेबी तलवार इस पवित्र हिन्दू-भूमि से महान् हिन्दू धर्म के पौधे को जिसे प्राचीन ऋषि-मुनियों और सन्त-महात्माओं ने अपने हृदय के रक्त से सींचा था, उखाड़ने के लिये लपलपाती रही । हिन्दुओ में से एक से एक बढ़कर वीर ने; सैनिक शक्ति पर्याप्त थी; धन का कोई अभाव नहीं था; रणकौशल नीति तथा बुद्धि की भी कमी न थी, किन्तु आपस में फूट के कारण एक दूसरे से विद्वेष रखते थे ।

आपने हिन्दू शास्त्रों का मनन किया । आपने कुछ शिष्यों को संस्कृत पढ़ने के लिए काशी के चैतन्य मठ में भेज दिया, जो वहाँ स० १७५२ वि० में संस्कृत के अच्छे विद्वान् बन कर लौट आए । गुरु गोविन्दसिंह जी ने इन विद्वानों से उपनिषद्, भागवत, भोजप्रबन्ध आदि का भाषा में अनुवाद कराया । इससे देववाणी संस्कृत और हिन्दू-शास्त्रों से गुरु साहब का कितना प्रेम था, यह प्रगट होता है ।

नाहन के राजा ने गुरु जी को अच्छी जागीर दी और पास में एक गढ़ बनवा कर उन्हें अपने ही पास रखा । कुल-घातक रामराय ने जिसने गुरु हरकिशन तथा गुरु तेगबहादर के प्राणघात में हिस्सा लिया था, अपने पापों का प्रायश्चित्त किया और बड़े दीन भाव से गुरु जी से क्षमा मांगी । गुरु जी ने उस पापी को क्षमा कर दिया ।

औरंगजेब का अत्याचार दिन पर दिन बढ़ने लगा । इससे पंजाब भर में असन्तोष फैल गया । सब लोग गुरु गोविन्दसिंह को अपना पूज्य और राजा मानते थे, इसलिए उनके पास ही

बादशाह के अत्याचारों की शिकायतें पहुंचाते थे। इन अत्याचारों को सुनते सुनते गुरु गोविन्द का हृदय थक गया था, इसलिये वे इस नादिरशाही का अन्त करने का उपाय सोचने लगे।

लाहौर के सूबेदार ने गुरु गोविन्दसिंह का दमन करने के लिये अपने लड़के हुसेनके साथ एक सेना भेजी। उस सेना में मुसलमानों के अतिरिक्त बहुत से जाति-द्रोही हिन्दू भी थे। लाहौर से मुगल-सेना के रवाना होने तथा रास्ते में उसने जो अत्याचार किये थे उन सब का समाचार गुरु गोविन्दसिंह को ज्ञान हो गया। उन्होंने आनन्दपुर को सुरक्षित रखने का प्रबन्ध किया। दीवान नन्दचन्द की देख-रेख में लड़ाई की तैयारी की गई। उधर कुछ लोगों ने गुरु गोविन्दसिंह की माता को जा कर फिर बहकाया। माता जी के कुछ कहने पर गुरु जी ने स्पष्ट कह दिहा —

"मैं मुसलमानों के अत्याचारों का अन्त करने के लिये उत्पन्न हुआ हूँ। प्राणों के भय से अत्याचारों के आगे सर झुकाना पाप है। आप मेरे कर्तव्य-पालन में बाधा न डालें।"

हुसेन अपने सिपाहियों के साथ आनन्दपुर पर चढ़ाई करने के लिये आ रहा था। रास्ते में गोलेरिया के एक राजा गोपाल से लड़ाई छिड़ गयी। लड़ाई में दोनों ओर के बहुत से आदमी मारे गये। इस लड़ाई में मुसलमान बहुत मरे। हुसेनी भी धराशायी हुआ। इस संग्राम में विजय श्री गोपाल के हाथ रही। इस प्रकार मुसलमानों का आनन्दपुर पर आक्रमण करने का दूसरा उद्योग भी विफल हुआ। मुसलमानों की पराजय का समाचार सुनकर सूबेदार दिलावर बहुत उद्विग्न हुआ। तीसरी बार फिर उसने लड़ाई का उद्योग करना चाहा। अब की बार उसने एक बड़ी भारी सेना के साथ शाऊरखाँ को गुरु गोविन्दसिंह से लड़ने के लिये भेजा। मुसलमानों की सेना आनन्दपुर की ओर बढ़ी

हुई जा रही थी । रास्ते में जसवाल राज्य पड़ता था। वहाँ के राजा ने मुसलमानों को आगे बढ़ने से रोका । इसी पर लड़ाई छिड़ गई । लड़ाई में मुसलमानों के बहुत से आदमी काम आए।

पिछली लड़ाइयों में मुसलमानों की हार का समाचार जब औरंगजेब ने सुना तो वह आग बबूला हो गया । उसने अपने लड़के मुअज्जम को एक बड़ी सेना को देकर सिक्खों से लड़ने भेजा। स० १७५१ वि० में मुअज्जम अपनी सेना समेत लाहौर पहुंचा । वहाँ से उसने मिर्जाबेग को बहुत सी सेना देकर पहाड़ी राजाओं तथा सिक्खों से कर प्राप्त करने के लिए भेजा। कुछ राजाओं ने कर देना स्वीकार कर लिया। कुछ ने मुसलमानों का सामना किया, किन्तु हार गये । मुसलमानों ने आनन्दपुर को भी घेर कर लूट लिया । गुरु जी को भी तीन दिन तक पहाड़ियो में छिपा रहना पड़ा । शत्रुओं ने सब राज्य को लूट कर आग लगा दी। आनन्दपुर भी उजाड़ दिया गया।

गुरु गोविन्द सिंह ने यज्ञ करना निश्चित किया । उन्होंने काशी से अनेक विद्वान् पण्डित बुलाए और यज्ञ आरम्भ करवा दिया। अग्नि प्रज्वलित की गई और आहुति पड़ने लगी। लगभग एक वर्ष तक इसी प्रकार यज्ञ होता रहा।

यज्ञ समाप्ति पर दूर २ से आया हुआ हिन्दू जनसमाज यज्ञ मण्डप में उपस्थित था। गुरु ने एक दूसरा अनुष्ठान करने की ठानी। गुरु साहब हाथ में नंगी तलवार लेकर मण्डप में आये और उन्होंने गर्ज कर कहा, "अकाल पुरुष की आज्ञा है कि हिन्दू धर्म की रक्षा के निमित्त सिखों में से पांच ऐसे वीर पुरुष चाहियें जो अपना सिर दे सकें, जिस से कि हिन्दुओं में वीरता का संचार हो। क्या इस जन-समाज में से कोई अपना सिर देने को उद्यत है ?"

गुरुदेव का सिंह-गर्जन सुनकर चारो ओर सन्नाटा छा गया। सभा में से किसी के मुंह से शब्द तक न निकला। इतने में दयाराम नाम का एक राजपूत अपनी जगह से उठा। उसने कहा "भगवान मेरा सिर तैयार है।" गुरु जी ने उसे अपने पास बुलाया और उसको अपने साथ कोने में लगे हुए एक खेमे में ले गये। तत्पश्चात् तलवार के खड़कने का शब्द सुनाई दिया, जैसे कि किसी का सिर काटा गया हो और साथ ही डेरे में से निकली हुई नाली में रक्त की धारा बह निकली। खेमें में से रक्त से सनी हुई तलवार लिये हुए गुरु जी फिर मंडप में आये और गर्ज कर फिर वही बात कही। इस बार सभा में से धर्मा नामक जाट उठा। उस को भी गुरु जी दयाराम की तरह खेमे में ले गये और उसी प्रकार शब्द सुनाई दिया तथा नाली में रक्त की धार बहने लगी। एस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह ने हिम्मतसिंह कुम्हार मोहकम सिंह धोबी तथा साहब सिंह नाई को भी जो क्रम २ से उठे थे, खेमें में ले जाकर बलिदान कर दिया।

उपस्थित जन-समाज इन पांचों वीर सिखों के शव को देखने को बड़ा उत्सुक था। कुछ समय के पश्चात् खेमा उठा दिया गया। सब को यह देख कर कि पांचों सिख बड़े उत्तम वस्त्र पहिने हुए दिव्य पुरुषों के समान सुशोभित हो रहे हैं, बड़ा आश्चर्य हुआ। गुरु जी ने सिंह गर्जन करते हुए कहा, "जिस दिन हिन्दू समाज में इस प्रकार के पुरुष निर्माण हो जावेगा, उस दिन से कोई भी मन्द भाग्य हिन्दू जाति पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकेगा।" सब लोग चकित थे। ये पांचों वीर सिख गुरु गोविन्दसिंह के परम प्रिय शिष्य थे। वे गुरुजी के सिंहासन के आस-पास बैठा करते थे।

गुरु गोबिन्द सिंह ने इस अनुष्ठान के द्वारा जिस बुद्धिमानी

से सिखों में नव शक्ति एवं वीरता का संचार कर दिया, यह सब को विदित है। आज से ही सिखों ने अपने शरीर को धर्म-रक्षा धर्म-सेवा अधर्म-नाश के लिए न्योछावर कर दिया। गुरु गोबिन्द सिंह ने समय की गति पहिचान कर ही यह कार्य किया।

दूसरे दिन केशवगढ़ में एक विशाल दरबार लगा। उस में दूर-दूर से सिख लोग आकर सम्मिलित हुए। बीच में ऊंचे सिंहासन पर अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित गुरु साहब विराजमान हुए। नवीन वस्त्र पहने हुए वे पांचों सिख भी गुरु जी के निकट बैठे। इस दरबार का उद्देश्य यह था कि समस्त सिक्खों का एक ध्येय, एक कार्य एवं एक ही मार्ग हो अर्थात् हिन्दू जाति की रक्षा के लिये समस्त सिखों की एक संगठित सेना बनाई जावे, जो अत्याचार को दूर करने के लिए शत्रुओं का नाश करे।

जब यह दरबार भर गया तब गुरु साहब ने लोह-पात्र मंगा कर उसमें पांच पदार्थ (कड़ा, गुड़, राब, खाण्ड और शहद) डाले और दरबार साहब का पानी मिला कर दुधारे की नोक से इसे चलाते हुए जपजी साहब का पाठ किया। फिर इस पर कृपाण फेर कर इसका नाम 'अमृत' रखा। तत्पश्चात् गुरु जी ने अपने पांचों प्यारे वीर सिखों को बुलाकर अपने पास बैठाया और उन्हें आज्ञा दी कि परमेश्वर का नाम लेकर तीन बार 'वाहगुरु' का उच्चारण करो। गुरु जी के आदेशानुसार उन्होंने 'वाहगुरु' का उच्चारण किया। गुरु जी ने कटोरा लेकर पहले पाँचों सिखों को अमृत पिलाया। पश्चात् गुरु जी ने स्वयं उन वीरों के हाथों से अमृत पान किया। फिर वह अमृत सबको पिलाया गया। इस अमृत पिलाने की रीति को 'पाहुल' कहा जाता है। खालसा धर्म का यह मूल सिद्धांत है। इस पन्थ के निम्नलिखित नियम निश्चित किये—

(१) खालसा पन्थ में सम्मिलित होने के लिये पांच सिखों के साथ

'पाहुल' का पान करना। (२) पाहुल पान करने पर सिंह कहलाना (३) जहाँ पांच सिख हों उसको राज खालसा समझना । (४) हर सिंह के पांच ककार अर्थात् केश, कड़ा, कंघा, कच्छ और कटार रखना आवश्यक है । (५) सिहों में जाति भेद नहीं होगा, सब आपस में भाई होंगे । (६) सिंह लोग युद्ध-कला सीखें तथा अपनी शक्ति लोहे पर खर्च करे। (७) युद्ध में मृत्यु प्राप्त सिंह परमगति को प्राप्त होता है। (८) यज्ञोपवीत न पहने। (९) खालसा धर्म को अपनावे। (१०) हिन्दू धर्म की रक्षा में कटिबद्ध रहें और इसकी कुरीतियों को दूर करें। (११) यवनकुल का नाश सिखों का परम धर्म है। (२२) एक ईश्वर की उपासना करे (१३) गुरु नानक को अपना धर्म गुरु एवं 'ग्रन्थ साहब' को धर्मग्रन्थ माने । (१४) अमृतसर का सरोवर सिखों का प्रधान तीर्थ है, इसमें स्नान करना चाहिए। (१५) तम्बाकू तथा अन्य नशीली वस्तुएं सेवन न करें। (१६) 'वाहगुरु की फतह' और 'वाहगुरु का खालसा' ये सिंहों के मूल मन्त्र होंगे।

इस धर्मानुष्ठान के होने के पश्चात् पंजाब के हजारों हिन्दू आकर खालसा-पन्थ में दीक्षित होने लगे और औरंगजेब के अत्याचार से पीड़ित लोग गुरु जी की शरण में आने लगे । इस प्रकार हिन्दुओं की शक्ति यवनों के विरुद्ध गुरु-झण्डे के नीचे निर्माण होने लगी।

एक दिन एक ब्राह्मण विवाह करके अपनी पत्नी को घर लिए जा रहा था कि रास्ते में वासी के पठान सरदार ने बलपूर्वक उस की स्त्री को छीनकर अपने घर रख ली । ब्राह्मण ने गुरु गोबिन्द सिंह से शिकायत की और इस काम में सहायता की प्रार्थना की। गुरु जी को इस पर बड़ा क्रोध आया । उन्होंने अपने पुत्र अजीतसिंह को बुलाकर आज्ञा दी—'वत्स' निरपराधिनी अबला का उद्धार करो और अत्याचारी पठान सरदार को पकड़ कर मेरे सम्मुख

ले आओ ।

गुरु जी की आज्ञा पाकर अजीतसिंह सिंह-शावक की भांति गर्जता हुआ थोड़े से सिपाहियों को लेकर पठान सरदार पर जा चढ़ा । सूरज निकलने से पहले ही अजीतसिंह ने पठान सरदार को पकड़ लिया, और उसके हांथ बांध कर गुरु जी के सामने उपस्थित किया । गुरु गोविन्दसिंह अत्याचारियों को बड़ा कड़ा दण्ड देते थे । पठान सरदार को भी उन्होंने प्राण-दण्ड दिया ब्राह्मण को उसकी पत्नी लौटा दी गई । इस प्रकार गुरुजी आततायियों का नाश और असहायों की रक्षा करने के लिये सदा उद्यत रहते थे ।

औरंगजेब अन्याय और अत्याचारों की प्रतिमूर्ति था । उसके कठोर शासन से हिन्दू ही नहीं किन्तु बहुत से मुसलमान तक तंग आ गए थे । उसे चारों ओर सन्देह दिखाई पड़ता था । दक्षिण और पंजाब से तो बहुत जल रहा था । पहाड़ी राजाओं का पत्र पाकर औरंगजेब आग बबूला हो गया । उसने सरहिन्द तथा लाहौर के सूबेदार को हुक्म दिया कि आनन्दपुर को नष्ट कर डालो और गुरु गोविन्दसिंह को पकड़ कर मेरे दरबार में ले आओ । शाही मुहर लगा कर लाहौर के सूबेदार तथा मलेरकोटला, कसूर, झंग, जालन्धर के छोटे छोटे शासकों के नाम एक आज्ञापत्र भेजा गया, जिसमें गुरु गोविन्दसिंह जी पर इस्लाम-विरोधी और उनके काफिर होने का आरोप लगाया गया था । शाही आज्ञा के अनुसार लाहौर के सूबेदार तथा पंजाब के अन्य स्थानों के शासकों ने अपनी अपनी सेनाएं सजा कर आनन्दपुर की ओर कूच कर दिया । भारत के लिये दुर्भाग्य और समस्त हिन्दू जाति के लिए कलङ्क की बात यह थी कि गुरु गोविन्द के उपर चढ़ाई करने वालों में अनेक पहाड़ी राजा और उनकी सेनाएं भी सम्मिलित थीं ।

आनन्दपुर पर मुसलमानों की चढ़ाई का समाचार बिजली की तरह चारों ओर फैल गया। सिक्ख योद्धा दल-बद्ध होकर आनन्दपुर में एकत्रित होने लगे। इस नये संग्राम का श्रीगणेश होने के पहले गुरु गोविन्दसिंह के पास लगभग बारह हजार योद्धा थे। परन्तु मुगल सेना में एक लाख से ऊपर सैनिक थे।

सिक्खों में एक से एक बढ़ कर योद्धा थे। एक भाषा, एक भाव और एक ही धर्म में वे दीक्षित थे। वे सब एक सूत्र में एक प्राण होकर आबद्ध थे। उनका प्रताप, उनका शौर्य अखण्ड था। संसार की बड़ी से बड़ी दुर्दमनीय शक्ति से भी वे लोहा ले सकते थे। इस प्रकार के तेजस्वी तथा धर्मवीर योद्धाओं को पाकर भला किस जाति का मस्तक गौरव से ऊँचा न हो उठेगा? इन योद्धाओं के महान् बलिदान और उनकी अमर कीर्ति से ही सिक्ख जाति भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है। वे मुसलमानों की सेना के सामने संख्या में बहुत थोड़े थे, किन्तु अपने शत्रुओं से वे कहीं अधिक उत्साही, दृढ़-प्रतिज्ञ और कर्मनिष्ठ थे।

मुसलमानों की सेना रणस्थल में जा पहुँची। पहला मोर्चा राजकुमार अजीतसिंह ने आगे बढ़कर लिया। उनके साथ दो तुर्क सरदार तथा थोड़ी सी खालसा पल्टन थी। दोनों ओर की सेनाओं में घोर संग्राम हुआ। दोनों ओर के बहुत से योद्धा मारे गये। मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक थी। सिखों के बहुत नामी नामी योद्धा खेत रहे। इस लड़ाई में गुरु गोविन्दसिंह के वीर पुत्र अजीतसिंह ने जो पराक्रम दिखाया, उसे देखकर शत्रु दल भी दंग रह गया। यह वीर युवक प्रलय के समान जिस समय अपनी लपलपाती हुई तलवार लेकर शत्रुओं पर टूट पड़ता था, उस समय शत्रु दल काई सी फट जाती थी।

नुसलमानों से जब और अधिक कुछ करते धरते न बना तब उन्होंने चारों ओर से आनन्दपुर को घेरा डाल दिया । इस दशा में सिक्खों को मुलग सेना से बाहर जाने का कोई रास्ता न रह गया। कई महीनों तक सिक्ख मुगल सेना से बराबर लड़ते रहे । जब कभी उन्हें खाने-पीने के सामान की आवश्यकता होती तभी वे गरजते हुए मुससलमानों पर टूट पड़ते और उनकी खाद्य-सामग्री उठा ले जाते थे । परन्तु बहुत दिन तक इस प्रकार काम नहीं चल सकता था। इस कारण सिक्खों ने संगठित होकर मुसलमानों पर एक प्रबल आक्रण किया। दोनों दलों में फिर भीषण लड़ाई हुई। अबकी बार उन्होंने आनन्दपुर में घुस जाने का प्रयत्न किया । यह प्रयत्न लगातार दो बार किया गया, किन्तु सिक्खों ने दोनों बार अपनी तलवार के बल से मुसलमानों को मार भगाया । सिक्खों के बहुत से योद्धा मारे गये परन्तु मुसलमानों के दांत ऐसे खट्टे हो गये कि उनके नायक ने आनन्दपुर के चारों ओर से घेरा उठा लेने का विचार निश्चित किया । घेरा उठा लेने से पहले पहाड़ी राजाओं ने एक और चाल चली । शाही सेनापति की ओर से एक दूत सिक्खों के पास भेजा गया । दूत के द्वारा सिक्खों से कहा गया कि यदि वे लोग आनन्दपुर छोड़कर चले जावें, तो उनके मार्ग में कोई रुकावट न डाली जायगी ।

परन्तु गुरु इन देशघातक और धर्म-विक्रेताओं की प्रतिज्ञा को असम्भव जानते थे । पर करते क्या । समय बड़ा विषम था । सिखों की संख्या थोड़ी रह गयी थी । खाने का सामग्री भी समाप्त हो गयी थी । लाचार हो आपने भागने का ही निश्चय किया । एक दिन परिवार और साथियों समेत्त दुर्ग में से निकले और कीर्तिपुर की ओर चल दिये ।

वे लोग दुर्ग से निकल कर कुछ दूर ही चले थे कि मुसलमानों ने

इनका पीछा किया। कीर्तिपुर से चलकर दूसरे दिन सरसा नदी पर पहुंचे। नदी चढ़ी हुई थी। उधर पीछे शत्रु-सेना आ रही थी। बड़ी विपत्ति का समय था। परन्तु वीर सिक्खों ने जैसे हो सका वैसे गुरु-पुत्रों और स्त्रियों को पार उतार दिया। कुछ सिख इधर-उधर भाग गये। गुरु साहब अपने ४० साथियों समेत चमकौर पहुंचे और एक स्थान पर छिपे रहे।

खालसा के इतिहास में यह सबसे अधिक आपत्तिजनक घड़ी थी। गुरुजी की दो स्त्रियों ने पुरुष-भेष में दिल्ली की ओर भाग कर जुझारसिंह नामक सिख के यहाँ आश्रय लिया। माता गूजरी ने अपने दो बच्चों—जोरावरसिंह और फतहसिंह को लेकर एक पहाड़ी गुफा में शरण ली।

गुरु साहब जहां छिपे थे वह गुप्त स्थान था जिस के चारों ओर खाई थी और मिट्टी की दीवारें थीं। वे एक दिन ही इस घुस में विश्राम करने पाये थे कि शत्रु-दल ने आकर चारों ओर ओर से उन्हें घेर लिया। सिख योद्धा गरजते हुए दुश्मनों पर टूट पड़े, भीषण लड़ाई ठन गई। पर केवल ४०-५० सिख कहाँ तक जोर मारते। शत्रु की हानि बहुत हुई पर वे लोग घेरा पूर्ववत् डाले रहे।

अपने दल की यह दशा देख कर कुमार अजीतसिंह अपने पिता गुरु गोविन्दसिंह जी के पास आया और हाथ जोड़ कर कहने लगा, 'पिता जी, युद्ध की दशा तो आप देख ही रहे हैं। अब तीन ही मार्ग हैं—पहला शत्रु के हाथ बन्दी हो जाना, दूसरा छिप कर भाग निकलना और तीसरा लड़ते लड़ते प्राण दे देना। भागना मैं डरपोकपन समझता हूँ तथा बन्दी होना अपनी प्रतिष्ठा को नष्ट करना है। इस प्रकार के जीने से मृत्यु कई गुना अच्छी है। जो उत्पन्न हुआ है, उस की एक दिन मृत्यु

अवश्यम्भावी है। तब वीरतापूर्वक लड़कर ही क्यों न उत्कृष्ट मृत्यु का आलिंगन करूं।

पुत्र की वीरतापूर्वक ओजस्विनी वाणी को सुन कर गुरु जी का वक्षस्थल गर्व से फूल उठा। उन्होंने उत्साह-युक्त शब्दों में पुत्र को उत्तर दिया— धन्य है पुत्र! तुम्हारा कथन सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। सच्चे वीरों का यही धर्म है। जाओ, स्वदेश और स्वधर्म के निमित्त अपना कर्तव्य पालन करो। मेरा आशीर्वाद तुम्हें स्वर्ग ले जायगा। जाओ शीघ्रता करो।"

सोलह वर्ष का वीर बालक अजीत पिता की आज्ञा पाकर आठ दस सिक्खों को साथ लेकर रणस्थल की ओर चला। सिक्खों के इस छोटे से दल को लड़ने के लिए आता देखकर शत्रु आश्चर्य करने लगे। पर देखते देखते वह छोटा सा सिंहों का दल असंख्य शत्रु-दल पर टूट पड़ा। इस समय अजीत की वीरता दर्शनीय थी। जिधर वह टूट पड़ता था उधर लाशों के ढेर के अतिरिक्त और कुछ नहीं बचता था। उसकी वीरता को देखकर शत्रु दल भी दांतों तले उंगली दबाने लगे। हाथ में शत्रु-संहारिणी तलवार थी और जिह्वा पर था ईश्वर का पवित्र नाम। महाप्रलय के समान वह मृत्यु से खेल रहा था। सूबेदार वजीर खां ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि इसे जीवित पकड़ लो। परन्तु अट्टहास करती हुई मृत्यु के पास किसी ने जाने की हिम्मत नहीं की। अन्त में वही हुआ जो होना था। वह वीरों की टोली अपने सेनापति सहित शत्रुओं को गाजर मूलि की तरह काट कर स्वर्ग को चली गयी। भारतीय इतिहास में अजित का नाम अमर हो गया।

अजित की असाधारण वीरता तथा लड़ाई के परिणाम की सूचना गुरु जी के दल में पहुँची। उसे सुन कर अजीत के छोटे

भाई चौदह वर्षीय वीर वालक जुझारसिंह से न रहा गया, वह भी पिता जी के पास जा पहुंचा और हाथ जोड़ कर कहने लगा, 'पिता जी, बड़े भैया तो वीर गति को प्राप्त हो गये हैं पर मैं क्या इस संसार में ही रह जाऊँगा ? मुझे भी उनका अनुसरण करने की आज्ञा दीजिये।"

गुरु जी प्रसन्न होकर उत्तर दिया, 'नहीं पुत्र, तुम यहाँ न रहने पाओगे। जाओ तुम भी वहीं अमर-पद प्राप्त करो।" इसके पश्चात् वीर पिता ने अपने हाथों से अपने पुत्र को रणवेश से सुसज्जित किया और कहा "पुत्र भारत माता को स्वतन्त्र करने के लिये अगणित बलिदानों की आवश्यकता है, अपने बड़े भैया के समान अपना भी जीवन-दान देकर हिन्दुओं की भावनाओं को जागृत करने में सहायक बनों। स्वर्ग का द्वार तुम्हारे लिये खुला है।"

इस समय वीर बालक जुझारसिंह का तेजस्वी मुख मंडल देखते ही बनता था। उसके साथ भी आठ-दस वीर सिख चले। जुझारसिंह ने चलते २ अपने एक साथी से कहा, 'भाई थोड़ा सा पानी तो पिला दो।" यह सुनते ही गुरु गोविन्दसिंह जी ने कहा, बेटा स्वर्ग के द्वार पर देवता लोग तुम्हारे लिये अमृत का प्याला लिये खड़े हैं। अतः यहाँ देर न करो। शीघ्र जाकर उस अमृत का पान करो।

पिता जी का यह वचन सुन कर वीर बालक ने फिर मुड़ कर नहीं देखा। पलक मारते ही रणस्थल में आकर वह शत्रुओं को ललकारने लगा। शत्रुओं के हथियार सभालते २ जुझारसिंह ने अनेकों को मार गिराया। अब क्या था, अपने छोटे से चपल पहाड़ी घोड़े को लेकर कभी शत्रुओं को चीरता हुआ उस ओर निकल जाता और कभी इस ओर आता। उसके हस्त-संचालन की गति बिजली के समान थी। काल के समान उसकी तलवार

लक्ष्य पर ही गिरती थी।

अन्त में लड़ते लड़ते जुझारसिंह थक गया । प्यास, थकावट और घावों के कारण वह भूमि पर गिर गया। देखते ही देखते उसकी आंखें सदा के लिये बन्द हो गईं । स्वधर्म के लिए दिये गये अगणित सिरों में एक सिर और जा मिला। वीर बालक अजीत और जुझार मर कर भी अमर हो गये।

इधर माता गूजरी ने दोनों छोटे गुरुपुत्रों जोरावरसिंह, फतह सिंह समेत अपने एक पुराने विश्वास पात्र सेवक के घर में आश्रय लिया। परन्तु यह सेवक बड़ा विश्वास-घातक निकला। माता गूजरी जी ने सेवक पर विश्वास करके अपने बहुमूल्य वस्तुएं तथा आभूषण उसे सुपुर्द कर दिये थे । एक रात्रि को यह धन हथियाने के लोभ में पड़कर इस सेवक ने बड़े जोर से चोर चोर की चिल्लाहट की किन्तु माता गूजरी जी को उसके कुविचार का पता लग गया। माता जी ने कहा 'तुम्हें जिस वस्तु की इच्छा हो, ले लो, किन्तु व्यर्थ में ही चोरी होने का क्यों ढोंग रच रहे हो ?' इस पर वह आग बबूला हो गया और कहने लगा, "क्या मैंने कुछ चुराया है। या आपको अपने यहाँ शरण देने की दक्षिणा दे रही हो ?" माता जी बुद्धिमती थी वह समझ गई कि इसका भाव बिगड़ा हुआ है। वह जानती थी, रक्षक था वही भक्षक बन गया है। अपने दुर्भाग्य पर तथा सेवक की कृतघ्नता पर माता जी को बड़ा दुख हुआ । इधर नीच सेवक बहुत देर तक बड़बड़ाता रहा। अपने अपराध को प्रकट होते जानकर उसने एक जघन्य कृत्य करने की ठानी। सवेरा हुआ तब वह काजी के घर जाकर अपने यहाँ माता गूजरी तथा गुरुपुत्र होने की सूचना दे आया। गुरु की तलवार से भयभीत म्लेक्ष गुरु-शत्रु बने बैठे थे । वे गीदड़ आये और सिंह-शावकों को पकड़

कर नाजिम के पास ले चले। जब माता ने यह दशा देखी तो वह रोने पीटने लगी। किन्तु इनके तड़पने पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

नाजिम ने माता गूजरी तथा गुरु जी के दोनों बच्चों को सरहिंद के सूबेदार वजीरखां के पास भिजवा दिया। सूबेदार बड़ा निर्दयी था। उसने इस्लाम धर्म के नाम पर ७-८ वर्ष के बच्चों को हुक्म सुनाया कि तुम कलमा पढ़ कर इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लो नहीं तो तुम्हें प्राण दण्ड दिया जायगा। सिंह-शावकों के रूप में गुरु गोविन्दसिंह के दोनों बालक हंस दिये और कहा कि हमें मृत्यु का डर नहीं। हमारे लिये जीवन और मृत्यु बराबर हैं। हम अपना धर्म किसी दशा में भी नहीं छोड़ेंगे।

वीर बालक बलि-वेदी पर

इस्लाम के नाम पर उन्मत्त हुए वजीरखां ने गुरु के दोनों पुत्रों को असहनीय कष्ट दिए। गुरु के वीर बालकों ने किसी तरह अगणित कष्टों को सहकर भी इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं किया। अन्त में वजीरखां ने उन्हें जीवित दीवार में चुनवाने की आज्ञा दी। इस्लाम का ढकोसला रचने वाले मौलवी मुल्लाओं ने इस बात का समर्थन किया। अन्त में दिन दहाड़े सब के देखते देखते गुरु गोबिन्दसिंह के वीर बालकों को दीवार में चुनवाना आरम्भ कर दिया गया। दीवार चुनते चुनते जब बालकों के कमर तक आई, तब धर्मान्ध सूबेदार ने पुकार कर कहा—"अब भी तुम्हारे प्राण बच सकते हैं, कलमा पढ़ कर मुसलमान धर्म स्वीकार कर लो ! मैं तुम्हें नेक सलाह देता हूँ।"

गुरु गोविन्दसिंह के पुत्र जोराबरसिंह ने हँसते हुए कहा—"यह कदापि नही हो सकता। हम गुरु गोबिन्दसिंह के पुत्र हैं, हमें मृत्यु का क्या भय दिखाता है ?" छोटे भाई फतहसिंह ने कहा—

'हम हिन्दू धर्म के लिए प्राण देंगे। हमारे ही रक्त-बीज के द्वारा भारत पर किए अत्याचारों का प्रतिशोध लिया जायगा ! नराधम ! हमारे रुधिर से रक्त-प्यास बुझाले !"

दीवार जब चुनते चुनते छोटे लड़के की गर्दन तक आ गई तब बड़े भाई की आंखों में से अश्रु-जल टपक पड़े। सूबेदार यह देखकर मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने समझा कि यह बालक इस्लाम स्वीकार कर लेना चाहता है। उसने कहा— क्यों तुम्हारी क्या इच्छा है ?" बालक ने गम्भीरता-पूर्वक उत्तर दिया 'मैं कैसा अभागा हूं कि अपने छोटे भाई से पहले मैंने जन्म लिया, माता का दुग्ध एवं मातृ-भूमि का अन्न-जल ग्रहण किया और धर्म की शिक्षा ली किन्तु आज धर्म के निमित्त जीवनदान देने का सौभाग्य मेरे से पहले उसको प्राप्त हो रहा है। इसलिये मुझे घोर पश्चाताप हो रहा है।"

वीर बालक का उपर्युक्त कथन सुनकर सब लोग दंग रह गये। चारों ओर सन्नाटा छा गया। किसी के मुंह से शब्द तक न निकला। मलेरकोटला के हाकिम ने वजीरखां को समझाया की इन बालकों का मारना बहुत अनुचित है। परन्तु वजीरखां के यहां बहुत से चापलूस और देश-द्रोही मुसाहिब ऐसे थे जिन्होंने इस पाप-कर्म का समर्थन किया। उस दिन वजीरखां के ऊपर किसी के समझाने बुझाने का कोई प्रभाव न हुआ। अन्त में पापात्मा के मुंह से 'मार दो' शब्द निकल पड़ा। उसके साथ ही जल्लादों ने दीवार में चुने हुए सिंह शावकों के समान गुरु गोविन्दसिंह के वीर बालकों के सिर काट दिये। यह दृश्य देख कर भारतीय प्रजा को जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्मिलित थे बड़ा दुख हुआ। सब लोग वजीरखां से बड़ी घृणा करने लगे। गुरु जी की माता गुजरी सूबेदार के कारागार में बन्द थी। गुरु-पुत्रों के बलिदान का शोक-समाचार सुन कर उनका

हृदय फटने लगा। अपने पौत्रों के वियोग की व्यथा वे सहन न कर सकीं और अन्त में कारागार की खिड़की से गिर कर उन्होंने अपने प्राण दिये। इस प्रकार मुगल शासन की क्रूर-सत्ता के नीचे तीन निर्दोष प्राणियों की बलि चढ़ गई।

इन बलिदानों का समाचार भारत के कोने २ में फैल गया। चारों ओर हाहाकार मच गया। जनता सब जगह मुगलों के अत्याचार-पूर्ण शासन से घृणा करने लगी चारों ओर यह सुनाई पड़ने लगा कि अब मुगल-साम्राज्य के शासन का अन्त आने को है। गुरु गोविन्द सिंह के अमर पुत्रों का बलिदान व्यर्थ नहीं जायेगा। एक दिन उसका खून वह रंग लायेगा कि अत्याचारियों का कहीं पता भी न चलेगा।

उधर घुस पर गुरु गोबिन्द सिंह भी मुगल सेना से घिरे हुए बराबर युद्ध में तत्पर थे। वे परकोटे से नीचे खड़े हुए शत्रु-दल का संहार कर रहे थे। गुरु जी के तीखे बाणों से घायल हुए शत्रुओं की बुरी दशा थी। इतने में रात हो गई और मुगलों ने यह सोच कर युद्ध बन्द कर दिया कि अब सिख भागकर कहां जायेंगे सबेरा होते ही हम गुरु जी को उनके साथियों सहित पकड़ लेंगे।

गुरु गोविन्द सिंह ने अपने दोनों पुत्रों के वीरगति पाने का समाचार बड़े धैर्य के साथ सुना। इस समाचार को सुनकर वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उनका तेज, उनका उत्साह और उनकी हार्दिक प्रसन्नता पहले से और भी अधिक बढ़ गई। जाति की रक्षा के लिए जिन गुरु गोविन्द सिंह ने तलवार हाथ में लेकर आततायियों के संहार का असिधारा-व्रत ले लिया था। वे आप अपने पुत्रों के अमर बलिदान से यदि जरा भी विचलित नहीं हुए, अथवा किंचित्मात्र भी शोक नहीं किया तो आश्चर्य ही क्या है। उनका आत्मा हिमालय के सामान अटल था। उनके आत्म-तेज में

प्रभाकर की प्रचण्डता थी, उनकी हड्डियां लोहे की बनी थीं। यही कारण था कि अपने पुत्रों के वीर गति पाने पर गुरु गोविन्द सिंह गर्व के मारे पुलकित हो उठे। हिन्दू जाति ! तू धन्य है जो तूने अपने पवित्र धराधाम पर गुरु गोविन्दसिंह जैसे वीरों को जन्म दिया।

उसी रात में, गुरु गोविन्दसिंह के उन पांच वीरों ने जो पहले पहल सिक्ख धर्म में दीक्षित हुए थे इस कच्ची गढ़ी को छोड़ कर बाहर निकल जाने का अनुरोध किया। इस अनुरोध पर गुरु जी अपने तीन योद्धाओं के साथ आधी रात के समय गढ़ी से बाहर निकले। मुगल सेना उसका घेरा डाले पड़ी थी। आहट पाकर कुछ मुग़ल चौकन्ने हो गये और उन्होंने अपने सिपाहियों को उठा लिया। बिगुल बजते ही मुग़ल-सेना कई टुकड़ियों में बट गई। वे लोग आपस में ही मार-काट करने लगे। ऐसा करते समय वे समझे कि हम सिक्खों से युद्ध कर रहे हैं। इस गड़बड़ी में गुरु जी अपने साथियों से बिछुड़ गये। मुसलमानों के बहुत से सैनिक आपस में ही कट मरे।

अब गुरु गोविन्दसिंह अकेले ही रास्ते में आगे बढ़े चले जा रहे थे। रात भर वे चलते रहे। सबेरा होते ही वे भोलापुर नाम के किसी गांव में जा पहुंचे। वहां उन्होंने पास ही एक सघन पेड़ों की कुञ्ज में छिप कर विश्राम किया।

गुरुजी पेड़ों के कुंज में विश्राम कर रहे थे। वे रात भर के थके मांदे तो थे ही, दिन चढ़ने पर उन्हें बड़ी प्यास लगी। पास में कहीं पानी का नाम भी न था। इस दशा में गुरु जी ने आक के पत्तों का रस पीकर अपनी प्यास बुझाई। रस पीते ही वे बेहोश हो गये। दिन भर गुरु जी बेहोशी में उसी कुंज में पड़े रहे। बहुत रात बीतने पर उन्हें कुछ चेतना हुई। फिर उठ कर उन्होंने आगे चलने का विचार किया, किन्तु अब उनके शरीर में इतना

बल नहीं रह गया था। जिस समय कच्ची गढ़ी से गुरु गोविन्द सिंह बाहर निकले थे और रात में मुग़लों ने उनका पीछा किया था, तब गुरु जी ने अपना घोड़ा वहीं छोड़ दिया था। वे भोलापुर पैदल चल कर पहुँचे थे। रास्ते में काटों और झाड़ियों में फंस कर उन्हें जो कष्ट मिले, उनको बड़ी वीरता से उन्होंने सहन किया। गुरु जी सममुच बड़े कष्ट-सहिष्णु थे।

उसी समय कुंज में पड़े हुए रात भर गुरु जी ईश्वर-भजन करते रहे। उस समय के कहे हुए गुरु जी के भजन बहुत प्रसिद्ध हैं। उनमें कहीं भी शोक-सूचक ध्वनि नहीं मिलती। उन भजनों में आर्य-जाति और देश की महिमा सिखों के सदुद्देश्य की सफलता के लिए ईश्वर-प्रार्थना, आत्मोत्सर्ग की महत्ता आदि उच्च भावों का समावेश है।

रात के पिछले पहर गुरुजी की थकावट कुछ दूर हुई। वे झाड़ी से निकल कर चलते बने। सबेरा होते ही वे माछूवाड़े के पास एक उद्यान में जा ठहरे। दिन चढ़ने पर गुरुजी में आगे बढ़ने की शक्ति न रही। वे राम भजन करते हुए उसी स्थान में पड़े रहे। थोड़ी देर पश्पात् गुरु जी के तीन योद्धा जो बिछुड़ गये थे ढूंढ़ते हुए उसी स्थान पर पहुंचे। आते ही वे गुरु जी के पैरों पर गिर पड़े। गुरु जी ने उन्हें हृदय से लगा कर आशीर्वाद दिया तीनों सिक्खों ने गुरु जी के पैरों और कपड़ों में से कांटे निकाले। इसके पश्चात् उन्होंने गुरु जी को कुंए पर स्नान कराया। इस उद्यान के स्वामी मुसलमान रुहेले थे। उन से गुरु जी बहुधा घोड़े लिया करते थे। उन्होंने गुरु जी के साथ बड़ा अच्छा व्यवहार किया और बचन दिया कि हम सदा अपके साथ हैं, आप की सहायता के लिये हम कुछ भी न उठा रखेंगे।

रुहेलों के स्थान पर गुरु गोविन्दसिंह अच्छी तरह और अधिक समय विश्राम भी न कर पाये थे कि मुगलों की एक टुकड़ी ने उस गांव को घेर लिया। वे लोग सिखों को ढूंढ़ रहे थे। परन्तु गुरुजी दो रुहेला सरदारों के साथ भेष बदल कर गांव से बाहर निकल आये। बड़ी दूर तक रुहेला सरदारों ने गुरु गोबिन्द सिंह को सकुशल पहुंचा दिया।

गुरु गोबिन्दसिंह से विदा होकर रुहेले अपने गांव को चले आए। वहाँ उन्हें बहुत समय तक मुगल सेना से लड़ना पड़ा और अपने गांव की रक्षा करनी पड़ी। गुरु जी आगे चल कर आलमगीर नाम के गांव में पहुँचे। वहाँ उन्हें एक शिष्य ने घोड़ा भेंट में दिया। इसी घोड़े पर गुरु जी ने आगे की यात्रा की। मार्ग में उन्हें माता गुजरी और अपने पुत्रों के बलिदान का समाचार मिला। इससे गुरु गोबिन्दसिंह तनिक भी उदास नहीं हुए, आगे बढ़ते ही चले गये। चलते चलते एक दिन गुरु जी दीनापुर पहुँचे। वहां उन्हें कई ऐसे योद्धा मिले, जिनकी सहायता से गुरु गोबिन्दसिंह ने मुसलमानों पर विजय पाई थी। दीनापुर के सिख योद्धाओं ने गुरु जी का बड़ा स्वागत सत्कार किया। गुरु गोबिन्दसिंह कुछ समय के लिये वहाँ ठहर गये।

गुरु गोबिन्दसिंह उन दिनों मुगलों से लोहा लेने के कारण बड़े लोकप्रिय हो रहे थे। उनके आगमन का समाचार सुनकर आस-पास के लोग आकर गुरु जी को भेंट देने लगे। गुरु जी आनन्दपुर आदि के युद्धों का वर्णन कर सर्वसाधारण को उनका कर्त्तव्य-ज्ञान सुझाने लगे। गुरु-पुत्रों के महान त्याग और उनके रण-कौशल की बातें सुन कर लोग कांप गये। उन्हें अत्याचारी औरंगजेब के प्रति घृणा हो गई।

सर-हिन्द के सूबेदार वजीरखां को गुरु जी के दीनापुर में ठहरने

का समाचार ज्ञात हुआ। उसने लमीर और सुमीर नाम के दो पुत्रों को जो गुरु जी के भक्त थे पत्र लिखा कि गुरु जी को हमारे हाथ सौंप दो। वीरों ने स्पष्ट उत्तर दे दिया कि हम गुरु जी के साथ विश्वासघात नहीं करते। हम प्राण देकर भी उनका साथ देंगे।

गुरु गोविन्दसिंह को निश्चय हो गया कि हमें वजीरखाँ से जल्दी ही लोहा लेना है। इसलिये उन्होंने चारों ओर सिखों के पास आज्ञा भेज दी कि वे अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर लड़ाई केलिए दीनापुर में आजावें। गुरू जी की आज्ञा पाकर चारों ओर से सिख योद्धा आकर दीनापुर में एकत्रित होने लगे। एक सेना बरार जाति के जाटों की तैयार हो गयी। जाट लोग गुरु जी के भक्त थे। उन्होंने आपनी सेनायें गुरुजी के श्री चरणों में समस्त हिन्दू जाति के हित के लिए समर्पित कर दी। इस प्रकार गुरु जी के पास शत्रुओं का संहार करने के लिए एक बड़ी भारी सेना सङ्गठित हो गई।

गुरु गोविन्दसिंह जी ने एक लम्बा पत्र सम्राट औरङ्गजेब को भेज कर चेतावनी दी कि अब तक तुम्हारे अधिकारियों ने प्रजा पर बहुत अत्याचार किये हैं, उनके फल-स्वरूप युद्ध में दोनों ओर के बहुत लोग मारे गये हैं। हमारे साथ मुसलमान शासकों ने बड़े प्रपञ्च रचे हैं, उन्होंने अनेक बार अपनी प्रतिज्ञायें तोड़ कर कुरान और नबी की झूठी कसमें खाई हैं। निरपराध प्रजा पर जो जुल्म वर्तमान- शासन की सत्ता में किये जा रहे हैं, उनका प्रतिकार करना हमारा धर्म है। हम दुष्टों का दमन कर आततायियों का संहार करना अपना धर्म समझते हैं, बिना इस के लोक सेवा के मार्ग में भारी रुकावट है। सिख-गुरु राज भोगने वाले नहीं थे। मुझे भी संसारिक वैभव का प्रलोभन नहीं है। हमारा उद्देश्य

तो केवल लोगो में धर्म-प्रचार और कर्तव्य-बुद्धि जागृत करना है। हमारा विश्वास है कि आप और आपके अधिकारी तब तक अत्याचारों का अन्त नहीं करेंगे, जब तक कि जनता के धर्मनिष्ठ और शान्ति-उपासक लोग, केवल कर्तव्य-पालन के भाव से प्रेरित होकर अत्याचारों का अन्त कर देने के लिये उपद्रव खड़ा न करेंगे और खुले मैदान में रण-भेरी बजा कर आप को दो-दो हाथ न दिखा देंगे। पत्र में गुरुजी ने अपने वीर पुत्रों के बलिदान, बजीरखां की क्रूरता आदि और भी बहुत सी बात का उल्लेख किया था। इस पत्र को पाकर औरंगजेब कांप गया। उसने पत्र भेज कर गुरुजी को अपने पास बुला भेजा, किन्तु गुरुजी गये नहीं।

इसी बीच में गुरुजी के साथ युद्ध में योग देने के लिये वे सिक्ख भी आ पहुँचे, जो प्राणों के डर से युद्ध से विरत हो कर आनन्दपुर चले गये थे। बात यह थी कि उनकी स्त्रियों ने उन्हें बुरी तरह फटकारा था और कहा था कि तुम लोग लहँगा पहन कर घर में बैठो, हम गुरु जी के लिये सर कटाने लड़ाई में जायेंगी। इसी तिरस्कार से क्षुब्ध होकर सिक्खों ने अपने किये पर पश्चाताप किया और गुरु-सेवा में आकर तत्पर हो गये। गुरु के पास से यह सिक्ख थोड़े ही दूर पर थे कि उन्हें मुगलों की सेना सामने आती हुई दिखाई दी। गुरु के पास सीधे न जाकर वे लोग झाड़ियों में छुप गये। जब शत्रु-दल पास आया तब वे सिक्ख-योद्धा झाड़ियों में से तीर गोली बरसाने लगे। मुसलमानों ने समझा कि गुरु गोविन्द सिंह की सेना यहीं पड़ी है, इसीलिये वे आगे न बढ़े। थोड़ी ही देर में मुगल-सेना ने जान लिया कि सिक्ख बहुत थोड़े हैं। बस घमसान लड़ाई होने लगी। सिख केवल ५० थे, उन्हों ने बड़ी

भारी मुगल-सेना का बड़े साहस से सामना किया, परन्तु वे अधिक समय तक मैदान में न रह सके । अन्त में वे एक-एक करके सब मारे गये। सिखों की मुख्य सेना के आने के डर से शत्रु-दल भी रण-भूमि छोड़ कर भाग खड़ा हुआ ।

किस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह की दोनों स्त्रियों ने पुरुषवेश में दिल्ली की ओर भाग कर एक शिष्य के यहां शरण ली थी, उसे पाठक भूले न होंगे। अब वे देवियां दीनापुर में आ पहुंची । वहाँ उन्हें अपनी सास और चारों पुत्रों के बलिदान का मर्मभेदी समचार मिला । गुरु गोविन्दसिंह का दरबार लगा हुआ था उस में गुरु जी की स्त्रियों ने आकर रोते हुए पूछा. कि हमारे प्राण-प्यारे पुत्र कहाँ हैं ? गुरु गोविन्दसिंह ने बड़े गर्व के साथ मस्तक ऊँचा करके कहा—

इस भारत के सीख पै चारों दीने वार ।
चार मुए तो क्या भया, जीवित कई हजार ।।

गुरु जी की बात सुन कर गुरु-पत्नियां खूब रोई पीटीं । परन्तु गुरु जी एक क्षण को भी दु:खित नहीं हुए और संसार की असारता का उपदेश करते हुए लोगों को समझाते बुझाते रहे । वास्तव में बात यह थी कि गुरु गोविन्दसिंह बड़े धीर और गम्भीर-प्रकृति के पुरुष थे। उनमें असाधारण बात यही थी कि कोई भी सांसारिक बाधा उन्हें अपने कर्तव्य से विचलित नहीं कर सकती थी ।

इसके पश्चात् औरंगजेब ने गुरु गोविन्दसिंह के पास एक दूत भेजा और उन्हें पत्र में लिख दिया कि आप आकर मुझ से मिलें, आपको अकारण ही जो कष्ट दिये गये हैं उनका उचित प्रतिकार किया जायगा । औरंगजेब दक्षिण में मराठों से युद्ध कर रहा था। गुरु जी वहीं उस से मिलने के लिये चल दिये ।

गुरु गोविन्दसिंह दक्षिण की ओर धर्म प्रचार करते हुए जा रहे थे। रास्ते में उन्हें औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला। इसी लिए गुरु जी राजपुताने के अनेक स्थानों में घूम-फिर कर धर्म-प्रचार करते रहे। उसी समय गुरु गोविन्दसिंह के पास शाहजादे मुअज्जम का एक पत्र आया। उसमें गुरु जी से सहायता मांगी गई थी। जिस समय राजकुमार मुअज्जम के साथ गुरु गोविन्दसिंह की मित्रता हुई थी, उस समय उसे गुरु जी ने सहायता का वचन दिया था। गुरु जी उसकी सहायता के लिए तैयारी करने लगे।

जिस समय औरंगजेब मरा उस समय राजकुमार मुअज्जम काबुल में था। मौका पाकर यहां उसका छोटा भाई आजम बादशाह बन बैठा। उधर काबुल में मुअज्जम बहादुरशाह के नाम से राजा बना और अपनी सेना के साथ दिल्ली आया। यहां आजम और मुअज्जम में दिल्ली की गद्दी के लिए युद्ध ठन गया।

गुरुजी ने अपने सिक्ख योद्धाओं को लड़ाई के लिये बुला भेजा, बात की बात में सिक्खों की सेना तैयार हो गई। आजम और मुअज्जम में घोर युद्ध होने लगा। दिल्ली की शाही पल्टनें आजम के साथ थीं। उनके सामने मुअज्जम की तथा सिक्खों की सेना हीन थी। फिर भी घोर युद्ध हुआ। गुरु गोविन्दसिंह के तीर से शाहजादा आजम मारा गया। उसके मरते ही शाही सेना मैदान छोड़ कर भाग निकली। इस प्रकार सिक्खों की सहायता से मुअज्जम विजयी हुआ।

विजय के बाद आगरे के क़िले में एक बड़ा भारी दरबार हुआ। शाहजादा मुअज्जम सिंहासनासीन होकर भारत का सम्राट घोषित किया गया। बड़े २ सरदारों और राजाओं ने उसको भेंट दी। इसके बाद बादशाह ने गुरु गोविन्दसिंह के प्रति हार्दिक

कृतज्ञता प्रकट की और सिक्खों को उनकी सहायता के लिये धन्यवाद दिया।

बहादूरशाह अपनी सेना सहित दिल्ली को चला गया। उसने गुरु जी को आगरे छोड़ दिया। थोड़े दिन तक गुरु गोविन्दसिंह ब्रज-भूमि में विचरते हुये लोगों को धर्मोपदेश देते रहे। तत्पश्चात् गुरु जी प्रसिद्ध तीर्थों में भ्रमण करते हुए गोदावरी के किनारे नादेड़ नामक स्थान में चले गये।

मराठे लोग भी गुरु जी के बड़े भक्त हो गये और लोकोपयोगी कार्यों में बड़े हर्ष के साथ उनका साथ देने लगे। गुरु की महाराष्ट्र में प्रसिद्ध वीर बन्दा वैरागी से ऐतिहासिक भेंट हुई। वीर बन्दा वैरागी धर्मनीति और रण-कौशल में अपने समय के एक ही पुरुष थे।

गुरु के उपदेश के प्रभाव से वैरागी के जीवन-चक्र ने पल्टा खाया। उसने तलवार हाथ में लेकर हिन्दू-धर्म की रक्षा करने के लिये प्राण तक दे देने की प्रतिज्ञा की। अन्त में असाधारण वीरता प्रदर्शित कर और स्वधर्म के असंख्य शत्रुओं का नाश कर अपने सात सौ साथियों सहित दिल्ली में हिन्दू जातीय इतिहास में अद्वितीय बलिदाम देकर अपना नाम अमर कर गये।

वीर बन्दा के कार्यों से बहादुरशाह गुरुजी की ओर से चौकन्ना हो गया। वैसे प्रकट रूप में तो वह गुरु गोविन्दसिंह के विरुद्ध कुछ न कर सका, इसलिये कि उनकी सहायता के बल पर वह बादशाह बन गया था। किन्तु गुप्त रूप से उस ने कुछ गुप्तचर गुरुजी को मारने के लिये नियुक्त कर दिये। गुरु गोविन्दसिंह लोगों में स्वतन्त्रता, न्याय और उन लोगों के दुष्टकर्मों का खण्डन कर रहे थे, जो अपने से अन्य धर्मों के लोगों को अनेक प्रकार के कष्ट देकर पीड़ित करते थे।

एक दिन अवसर पाकर, रात में बादशाह के गुप्तचर एक पठान ने सोते हुए गुरु गोविन्दसिंह के पेट में कटार भोंक दी। गुरु जी ने तुरन्त ही अपनी तलवार से पठान का सिर काट लिया। गुरु जी पठान के वार से मरे नहीं किन्तु घायल हो गये। उसी क्षण उनकी महरम पट्टी की गई। ५-६ महीने तक गुरु गोविन्दसिंह चारपाई पर पड़े रहे। इसके पश्चात् वह चलने फिरने और उपदेश देने लगे। एक दिन किसी शिष्य को सिखाने के लिये गुरु जी ने एक भारी धनुष की प्रत्यञ्चा खींच कर उस पर बाण चढ़ाया। उससे उनका घाव एक दम फट गया, घाव से रक्त-धार वह निकली और गुरु जी को बहोशी आने लगी। इसी दशा में गुरु गोविन्दसिंह ने अपने भक्तों को बुला कर उन्हें भक्ति-पूर्ण उपदेश दिया और अन्त में इस संसार को छोड़ कर कार्तिक शुक्ल ५ संवत् १७६५ वि० को सदा के लिए उस लोक को चले गये जहां से फिर कभी लौटना नहीं होता ! देहावसान के समय गुरु जी की अवस्था ४२ वर्ष की थी। इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह के रूप में उस दीप शिखा की एक टिमटिमाती हुई ज्योति बुझ गई, जिसने अपने शुभ आलोक से समस्त भारत को अलोकित कर रखा था।

अपने देश और धर्म की सेवा में गुरु गोविन्द सिंह ने अपना सब कुछ दे डाला। लोक-सेवा की पवित्र धुन में न तो उन्होंने अपने ऐहिक सुखों की परवाह की, न स्त्री-बच्चों की। वे सच्चे अर्थ में योद्धा थे। बड़ी से बड़ी सत्ता और शक्ति के रूप में मुगल-सम्राट ने गुरु गोविन्दसिंह की तलवार का लोहा माना था। गुरु जी ने अपने शत्रुओं के सामने मस्तक झुकाना तो कभी जाना ही नहीं। उन्होंने सदा अपनी तलवार से अरि-दल को छकाया। अपने उद्योग से गुरु गोविन्द सिंह ने सिक्खों के रुप में पंजाब में एक ऐसी वीर जाति उत्पन्न कर दी, जिसकी वीरता, शौर्य और अनुपम रण-कला इतिहास में अपना सानी नहीं रखती। आज भारत में ऐसे कितने देश-भक्त हैं, जो देश-सेवा की

पवित्र वेदी पर अपने चार पुत्रों का सर कटा देने के पश्चात् यह कहने का साहस करें—

"चार दिये तो क्या हुआ जीवित कई हजार"

गुरु गोविन्दसिंह ने हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म के उद्धार के लिये जो अनुपम बलिदान दिए, वे प्रत्येक भारतीय के लिये अनुकरणीय हैं। भारत के इतिहास में सिक्ख पंथ और उसके दशम गुरु गोविन्दसिंह जी का सचमुच बहुत ऊँचा स्थान है।

———